डाक टिकटों पर जैन इतिहास

Regular Series – Copies

Serial No. I to 18

— सुरेश जैन —

साईंटिफिक होजरी,
सुन्दर नगर,
किंग पैलेस स्ट्रीट
निकट जयपुर गोल्डन
लुधियाना – 141007
(पंजाब – भारत)

M – 94172-26292
E-Mail Sureshjain298@gmail.com

STAMPS RELATED TO JAINISM

- Suresh Jain

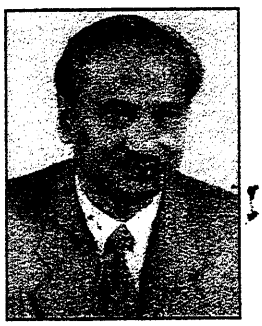

Stamps are not only a source of revenue or colorful printed paper ,but they have also some story behind them. Mostly the stamps are related to some national events. Geographical happenings, to some important personalities or to some historical places and events. In this way we can call stamps the messengers of country's culture, religion, Geography and tourism etc.

Here we will discuss a brief history of the stamps related to JAINISM.

The different themes are Jain Tirath, Jain temples, Jain Saints, Jain Statues, Jain personalities, Jain events, Sculptures from Jain temples etc.

These stamps were issued by,

1. Indian States
2. British Period
3. India Post Independence
4. Foreign

Here is a list of the Stamps issued so far related to Jainism , Date wise, In the coming months I shall contribute one or two pages in every issue (Serial wise) in this Jain monthly patrika for the interest and knowledge of the readers.

If in between any more stamp is released on Jainism in any part of the world, I shall contribute an article on that stamp also.

LIST OF STAMPS ON JAINISM

	INDIAN STATES
18.10.29	Girnar (issued by Saurashtra State - Part of India before independence
	BRITISH PERIOD
06.05.35	Bhagwan Sheetalnath Jain Temple, Calcutta
	INDIAN POST INDEPENDENCE
15.08.49	Shatryunjay Temple, Palitana
31.12.57	Bombay Univesity - Rajabai Jain Tower
15.02.60	Saint Thiruvallavar
30.12.72	Vikram Ambalal Sarabhai (Famous Jain Atomic Scientist)
13.11.74	Bhagwan Mahavir 2500th Nirwan Anniversary (Pawapuri Jal Mandir)
10.01.75	World Hindi Convention (Image of Jain Saraswati)
12.04.75	World Telugu Conference (Image of Jain Saraswati)
27.07.78	Kachchh Museum (Piece from Old Jain Temple)

09.02.81	Gommateshwara Bahubali 1000th Anniversary. Sravanabelogla
09.05.88	Dr. Karma Veer Bhaurao Patil (Jain Social Reformer and Educationist)
24.08.91	Jain Muni Mishrimal ji
20.12.94	Baroda Museum - Bronze Idol of Bhagwan Rishabhnath (Se-Tenent)
28.01.98	Dr. Jagdish Chandra Jain (Famous Jain Writer and Educationist)
06.03.99	Sculpture From Parshwanath Jain Temple, Khajuraho
31.12.00	Jain Raja Bhamashah
06.04.01	Bhagwan Mahaveer 2600th Janma Kalyanak
21.07.01	Jain Historian Chandragupta Maurya
18.11.01	Jain Film Producer V. Shantaram
09.08.02	Acharya Anand Rishi Maharaj
27.05.04	Dr. Indra Chandra Shastri
30.06.04	Terapanth Aacharya Bhikshu
23.11.04	Walchand Hirachand (Famous Jain Industrialist)
11.11.06	Lala Deen Dayal
08.12.08	Dr. L.M. Singhvi (Eminent Scholar)
14.12.08	Indian Institute of Science (showing Vikram Sarabhai on Se-Tenent)
21.02.09	Jainacharya Vallabh Suri ji
28.02.09	Harakchand Nahta
14.10.09	Dilwara Jain Temple
14.10.09	Ranakpur Jain Temple
08.11.09	Jain Scholar Veerchand Rabhav ji Gandhi
27.06.10	World Clossical Tamil Conference (Saint Thiruvalluvar)
30.04.11	Mahasati Umrao Kunwar ji
07.07.11	D.S. Kothari (Famous Jain Scientist)
25.09.11	Jain Aacharya Jaimal ji Maharaj
17.04.12	Godiji Parshwanath Jain Temple, Mumbai – 200th Anniversary
16.05.12	Karpoor Chandra 'Kulish' (Renowned Jain Journalist)

FOREIGN

23.08.79	East Germany	Bhagwan Mahaveer
06.04.06	Nepal	World Hindu Federation (Jain Prateek)
20.01.07	Cango	World Religion Day (Jain Prateek)

गिरनार पर्वत

I

■

सुरेश जैन

■

डाक टिकटों पर जैन इतिहास, इस शृंखला को क्रमवार पाठकों के सम्मुख रखा जायेगा। आशा है पाठकों को यह लेख रोचक लगेगा। इस प्रकार पाठकों को जैन इतिहास पर छपी 43 डाक टिकटों की जानकारी तथा उनके इतिहास के बारे में अवगत करवाया जायेगा। - लेखक

सूर्यपुर के राजा समुद्रविजय तथा रानी शिवा देवी के पुत्र तथा श्रीकृष्णजी के चचरे भाई अरिष्टनेमीजी की बारात सज-धज कर जा रही थी। पर्वत के समान ऊँचे गजराज पर आरूढ़ अरिष्टनेमीजी की दृष्टि, विशाल बाड़ों तथा पिंजरों पर पड़ी, जिनमें पशु तथा पक्षी घिरे हुए थे। प्राणी भयाक्रान्त होकर चीत्कार कर रहे थे, मृत्युभय से भयभीत थे। पशुओं की आवाजें अरिष्टनेमी के कानों तक पहुँची। उन्होंने अपने महावत से पूछा, ''इन पशुओं को बन्दी क्यों बनाया गया है?'' महावत ने कहा, ''स्वामिन् ! ये सभी प्राणी आपकी बारात के भोजन के लिए हैं।'' उसी समय अरिष्टनेमी का हृदय दया से भर गया, उन्होंने महावत से कहा, ''इनके बन्धन तोड़ कर इन्हें स्वतन्त्र कर दो।'' खुद अरिष्टनेमी जी चिंतन में डूब गये, सोचा-कितनी घोर हिंसा थी ! मेरे विवाह पर हज़ारों पशु-पक्षियों की हत्या। धिक्कार है ऐसा लगन ! मुझे विवाह नहीं करवाना! रथ वापिस ले चलो।'' माता-पिता सगे-सम्बन्धियों ने तथा श्रीकृष्ण जी ने बहुत समझाया परन्तु अरिष्टनेमी टस-से-मस न हुए। अरिष्टनेमी ने अपने मन को मोड़ा। दीक्षित हुए तथा जूनागढ़ स्थित गिरनार पर्वत पर चले गये जहाँ पर तप किया। साधना की। केवलज्ञान को प्राप्त किया तथा यहीं पर निर्वाण भी प्राप्त किया।

22 वें तीर्थंकर अरिष्टनेमी जो भगवान नेमीनाथजी कहलाये, उनकी पुण्य भूमि होने के कारण गिरनार पर्वत जैन धर्म के अनुयायिइयों का महान् तीर्थ बना।

गिरनार तीर्थ

गिरनार तीर्थ एक प्राचीन तथा भव्य तीर्थ है। श्री नेमिनाथ भगवान के निर्वाण स्थल के उपरान्त आने वाली चौबीसी में से बीस तीर्थंकर यहाँ से निर्वाण प्राप्त करेंगे। इस समय यहाँ पर 22 वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ जी के दो मंदिर हैं (एक श्वेताम्बर तथा दूसरा दिगम्बर) गिरनार पर्वत की चढ़ाई बहुत कठिन है। तलहटी से लगभग सवा तीन कि.मी. पर 4200 सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद मंदिर हैं तथा कुछ दूर आगे-जाने पर दाहिने हाथ राजल की गुफा आती हैं जहाँ पर राजकुमारी राजमती (जिनके साथ अरिष्टनेमी की शादी होनी थी) ने संसार छोड़कर तप किया था। यहाँ से तीन किलो मीटर ऊपर जा कर अंबा

देवी का मंदिर है। श्री अंबाजी भगवान श्री नेमिनाथजी की अधिष्ठायिका देवी है। सभी मंदिर बड़े रमणीक-भव्य तथा बड़े सुन्दर बने हुए हैं। मंदिरों में अन्य तीर्थंकरों की भी कुछ भव्य प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।

गिरनार पर्वत पर डाक टिकट

संसार में सर्वप्रथम जैन इतिहास पर डाक टिकट 18.10.1929 को गिरनार पर्वत के चित्र वाला जो कि जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथजी की दीक्षा भूमि, तप भूमि, केवलज्ञान भूमि तथा निर्वाण भूमि है, उस पर्वत श्रृंखला पर सौराष्ट्र रियासत ने नवाब सर माहबत खान रसूल खान के शासन काल में दो टिकटों का एक सेट जूनागढ़ शहर तथा गिरनार पर्वत पर निकाला था। एक टिकट की कीमत 3 पाई थी जो कि काले तथा हरे रंग में छापी गई थी तथा दूसरी टिकट का मूल्य 3 आने था, यह काले तथा लाल रंग में छापी गई थी। डाक टिकटों के ऊपर Saurashtra Postage लिखा है तथा नीचे Junagadh City and The Girnar लिखा हुआ है।

इन टिकटों पर कई बार Revenue तथा Sarkari शब्द छपवा कर इनका इस्तेमाल राजस्व के लिए तथा प्रशासन के लिए हुआ। इस प्रकार इन टिकटों का प्रयोग 1. डाक के लिए 2. राजस्व के लिए 3. तथा प्रशासन के लिए हुआ। पाठकों की जानकारी के लिए यह बात भी रोचक होगी कि गिरनार पर्वत के चित्र वाला एक पोस्ट कार्ड भी उस समय जारी किया गया था जिस पर 3 पाई वाला डाक टिकट का चित्र छापा गया था।

इन टिकटों का विवरण इंगलैंड में छपने वाले Stanley Gibbons Catalouge 'स्टेम्पस् ऑफ दी वर्ल्ड' में Indian States के अंतर्गत SG No 49 तथा 53 पर दिया गया है। इन टिकटों का डिज़ाइन व छपाई का कार्य इण्डिया सिक्योरटी प्रेस-नासिक में हुआ था।

THREE PIES STAMP ON JUNAGAD CITY AND THE GIRNAR

THREE ANNAS STAMP ON JUNAGAD CITY AND THE GIRNAR

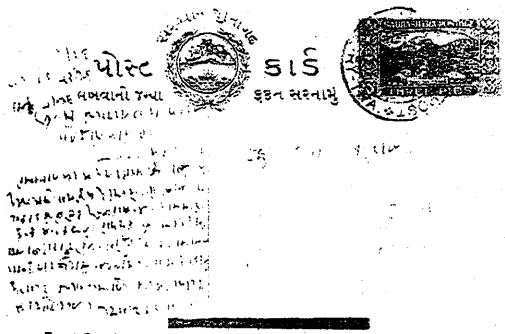

Post Card issued by Saurastra State depicting GIRNAR HILLS

डाक टिकटों पर जैन इतिहास

क्रमांक-2

(ब्रिटिश शासन काल)

■

सुरेश जैन

■

भगवान शीतलनाथ जैन मंदिर - कलकत्ता

भगवान शीतलनाथ जी जैन धर्म के दसवें तीर्थङ्कर हैं। ये अकल्पनीय महामानवता के भण्डार हैं। इन्होंने अपनी आत्मा में सर्वोच्च गुणों का संविकास कर लिया था. इसी कारण ये संसार-समुद्र के लिए जहाज के समान हैं. ये विश्व के लिए आनन्द-दाता हैं. ऐसे तीर्थङ्कर भव्यजनों को संसार-सागर से पार करने वाले हैं।

भद्दिलपुर के रमणीय नगर में दृढ़रथ राजा की नन्दा नामक महारानी की कुक्षि से गर्भकाल पूर्ण होने पर 'वत्स' चिह्न से संयुक्त माघ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के योग में शीतल बालक ने जन्म लिया। बहुत लम्बे समय तक आपने संसार-सुख तथा राजसुख को भोगा।

श्री शीतलनाथ जी ने माघ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के ही योग में प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षा लेते ही मन:पर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया। केवल तीन महीने व्यतीत होने पर ही पौष कृष्णा चतुर्दशी के दिन प्रभु को केवलज्ञान की समुपलब्धि हो गई। अनेकानेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए सुप्रसिद्ध जैन तीर्थ सम्मेद शिखर पर पधारे और वहाँ एक मास का संथारा कर वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के योग में अवशेष कर्मों को खपा कर एक हजार अन्य मुनियों के साथ शाश्वत सिद्ध बुद्ध मुक्त हो निर्वाण को प्राप्त हो गए।

भगवान शीतलनाथ जैन मंदिर एक बहुत भव्य मंदिर है जो कोलकाता शहर के श्याम बाजार में माणिकतल्ला में स्थित है। इसकी निर्माण शैली बेहद अद्भुत है। इसमें काँच तथा शीशे के बेजोड़ सँगम से कारीगरी का अनोखा परिचय दिया गया है, जो अपने आप में खूबसूरती की एक जिन्दा मिसाल है। जानकारों के मतानुसार इस मंदिर की कला बिलकुल विभिन्न प्रकार की है। जहाँ शीतलनाथ भगवान की पूजा अर्चना करने वालों के मन को यह मंदिर शीतलता प्रदान करता है, वहीं यह देश-विदेश के पर्यटकों के लिए बहुत बड़ा आकर्षण का केन्द्र है।

इस मंदिर में शीतलनाथ भगवान की श्वेत वर्ण की पद्मासनस्थ प्रतिमा है।

इस मंदिर का निर्माण रायबहादुर श्री बद्री दासजी, जो कि भारत के वायसराय के मुकीम थे, उन्होंने ई.सन् 1868 में करवाया था (माघ शुक्ला) पंचमी वि.सं. 1924) इस मंदिर के निर्माणकर्त्ता के नाम से भी यह मंदिर जाना जाता है तथा इस मंदिर को बद्रीदास टेम्पल भी कहते हैं। कोलकाता निवासी इस मंदिर को जैन मंदिर श्याम बाजार अथवा जैन मंदिर माणिकतल्ला भी कहते हैं।

शीतलनाथ जैन मंदिर पर डाक टिकट

6 मई 1935 को जब किंग जार्ज पंचम के राज्याभिषेक की रजत जयंती का उत्सव मनाया गया, उस समय भारत की ब्रिटिश सरकार द्वारा आधा आने मूल्य से लेकर 8 आने मूल्य तक के सात डाक टिकटों का एक सेट जारी किया गया था। इन टिकटों को छापने के लिए भारत के चारों धर्मों के चार धार्मिक स्थलों का तथा तीन ऐतिहासिक स्थलों का चयन किया गया था। इन डाक टिकटों पर जिन धार्मिक स्थलों के चित्र छपे हैं उनके नाम इस प्रकार हैं -

1. रामेश्वरम् टेम्पल - मद्रास
2. शीतलनाथ जैन टेम्पल - कलकत्ता
3. गोल्डन टेम्पल - अमृतसर
4. पागोडा - मांडले

इस सेट में ($1^1/_4$) सवा आना के डाक टिकट पर कलकत्ता के प्रसिद्ध शीतल नाथ जैन मन्दिर का चित्र है। टिकट के दाँई ओर जार्ज पंचम का चित्र तथा बांयी ओर मंदिर का चित्र बना हुआ है। टिकट के ऊपर INDIA POSTAGE लिखा है तथा नीचे JAIN TEMPLE CALCUTTA लिखा है। सब से नीचे SILVER JUBILEE COMMEMORATION तथा 6TH MAY 1935 लिखा है। यह दोरंगी डाक टिकट काले तथा खुले जामनी रँग में इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस-नासिक द्वारा छापी गई है। पाठकों की जानकारी के लिए यह बात भी रोचक होगी कि जिस टिकट को इस लेख के साथ छापा गया है उस टिकट पर ई.सन् 1935 का पोस्ट मार्क लगा हुआ है। इस टिकट का विवरण S.G. CATALOUGE - STAMPS OF THE WORLD में BRITISH PERIOD के अंतर्गत नं. 243 पर दिया गया है। ♦♦

डाक टिकटों पर जैन इतिहास

क्रमांक-3

(स्वतंत्र भारत)

सुरेश जैन, लुधियाना

शत्रुंजय मन्दिर, पालीताना

आदीश्वर भगवान ऋषभदेव तथा शत्रुंजयतीर्थ भगवान ऋषभदेव का जन्म चैत्र कृष्णा अष्टमी की अर्धरात्रि को जब सभी ग्रह उच्च स्थान में थे, तब हुआ। पिता नाभिराजा तथा माता मोरां देवी के पुत्र का जब जन्म हुआ उस समय तीनों लोकों में प्रकाश फैल गया। माता मोरां देवी ने जो चौदह महास्वप्न देखे थे उनमें सर्वप्रथम वृषभ को देखा था और प्रभु की जंघा पर भी वृषभ का चिह्न था अत: प्रभु का नाम ही ऋषभ रखा गया। कुछ समय बाद प्रभु ने जब देखा कि कल्पवृक्ष प्राय: समाप्त हो रहे हैं तो प्रभु ने असि, मसि तथा कृषि ये तीन भाँति की नीतियाँ जनसमूह को सिखलाईं।

प्रभु ने समय आने पर चार हजार व्यक्तियों के साथ दीक्षा ग्रहण की, सतत साधना में संलग्न रहते हुए अन्तत: फाल्गुन कृष्णा एकादशी को उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के योग में केवलज्ञान व केवलदर्शन का अपूर्व आलोक प्राप्त किया।

आदीश्वर भगवान श्री ऋषभदेव जी शत्रुंजय पर नियमित पदार्पण करते तथा पर्वत के ऊपर स्थित रायण वृक्ष के नीचे तपश्चर्या और आराधना करते थे, वे यहाँ पर निन्यानवे (99) बार पधारे थे। अत: आज भी 99 यात्राओं का माहात्म्य है। वर्तमान चौबीसी में भगवान नेमिनाथ के अतिरिक्त अन्य 23 तीर्थंकर अपने साधनाकाल में यहाँ पधारे थे। इसी कारण इस तीर्थ के कण-कण को पवित्र माना जाता है।

शत्रुंजय तीर्थ :

सिद्धगिरिराज का शत्रुंजय नाम शुकराजा ने रखा था। संक्षेप में घटना इस प्रकार है। शुकराजा एक बार तीर्थयात्रा करने गये थे। चन्द्रशेखर राजा ने देवी की साधना से शुकराजा का रूप बनाया तथा वास्तविक शुकराजा के राजमहल में वह कृत्रिम शुकराजा बन कर रहने लगा व राज्य करने लगा। यात्रा करके जब असली शुकराजा वापस आया तो मंत्रियों ने उसको राजभवन में घुसने

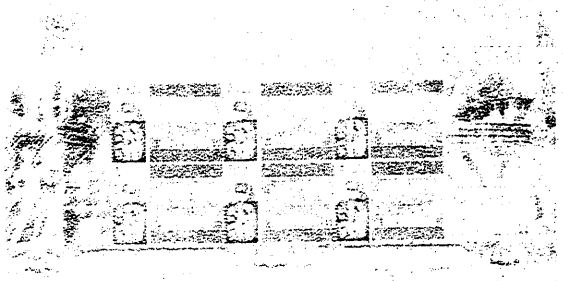

www.cosco.in

नहीं दिया। हताश हो वह वापस लौट रहा था कि बीच में केवली मृगध्वज मुनि मिले। राजा ने राज्यप्राप्ति का उपाय पूछा। मुनिश्री ने कहा कि पाप रहित धर्मकृत्य शत्रु का व अपना, दोनों का हित करने वाला है। सिद्धगिरिराज पर गुफा में छह महीने तक ब्रह्मचर्य पालन व एकासणा के साथ ऋषभदेव भगवान का ध्यान करने पर प्रकाश स्फुरायमान होता है। इससे अनिष्टनाश व इष्टप्राप्ति होती है। तब शुकराजा ने छह महीने तक विमलगिरि पर साधना की। तब सत्य प्रकट हुआ। नकली शुकराजा बना हुआ चंद्रशेखर भाग खड़ा हुआ तथा असली शुकराजा राज्य करने लगा। उसने आसपास के सभी राजाओं को बुला कर कहा कि इस तीर्थ के प्रभाव से शत्रु पर विजय प्राप्त हुई है। इसलिए इसका नाम शत्रुंजय तीर्थ रखा जाता है।

मंदिरों की भूमि शत्रुंजय तीर्थ अपनी सुन्दरता तथा भव्यता के कारण समस्त जैन तीर्थों में सबसे अधिक खूबसूरत है। इस तीर्थ पर कुछ मंदिर ग्यारहवीं शताब्दी के हैं तथा वे सब-के-सब श्रद्धालुओं द्वारा बनवाये गये हैं।

यहाँ पर करीब 1300 मन्दिरों में 27000 मूर्तियाँ हैं। (परिचय गुजरात पर्यटन)। भारतवर्ष के उत्तर में बर्फ की चोटियों से ढके हुए हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी को छूती हुई समुद्र की लहरों तक पूर्व में अरुणाचल से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक एक भी स्थान ऐसा नहीं होगा जहाँ से श्रद्धा पूर्वक धन के अंबार इस स्थान के मन्दिरों को बनवाने के लिए न पहुँचे हों। गली के बाद गली-चौराहे के बाद चौराहा, हर जगह मन्दिर। यह सब जैन धर्म के अनुयायियों के श्रद्धा तथा विश्वास के प्रतीक हैं। अधिकतर मन्दिर पिछले 1000 वर्षों में बने हैं। ई. सन् 1656 में शाहजहाँ के बेटे मुराद (जो खुद भी एक धार्मिक व्यक्ति था तथा उस समय गुजरात का गवर्नर था) ने पालीताना गाँव तथा शत्रुंजय तीर्थ की पहाड़ियाँ एक धनाढ्य जैन व्यापारी श्री शाँतिदास जैन जौहरी को दे दिये थे तथा इस गाँव का सारा कर माफ कर दिया था। इसके बाद इस तीर्थ पर बड़ी तेजी से विकास होने लगा। मन्दिरों का निर्माण बड़ी संख्या में होने लगा। ई. सन् 1730 में अधिकांश मन्दिरों का नियंत्रण श्री कल्याण जी आनन्द जी ट्रस्ट को सौंप दिया गया था। यह ट्रस्ट आज तक इनकी देख-रेख कर रहा है। आप कभी भी इस तीर्थ की यात्रा को जायें आपको हर समय नये मन्दिरों का निर्माण तथा पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार होता दिखाई देगा।

शत्रुंजय मन्दिर पर डाक टिकट : स्वतंत्र भारत में पहली बार 15 अगस्त 1949 को डाक टिकटों का एक सेट जिसमें 16 डाक टिकटें थीं तथा जिन का मूल्य 3 पैसे से लेकर 15 रुपये तक था, तीसरे स्वतंत्रता दिवस पर जारी किया गया था। ये डाक टिकटें प्रथम नियमित ARCHEOLOGICAL SERIES के अंतर्गत जारी की गई थीं। इन डाक टिकटों में सबसे ऊँचे डाक टिकट का मूल्य 15 रुपये भी तथा इस पर शत्रुंजय मन्दिर पालीताना का चित्र छापा गया था। यह डाक टिकट ब्राउन तथा लाल रंग में OFFSET LITHOGRAPHY द्वारा छापी

गई थी। टिकट के ऊपर POSTAGE तथा नीचे SATRUNJAYA TEMPLE PALITANA सबसे नीचे INDIA लिखा है। पाठकों की जानकारी के लिए यह बताया जा रहा है कि यह 15 रुपये का डाक टिकट भारतीय डाक टिकटों के इतिहास में स्वतंत्रता के बाद 40 वर्षों तक सबसे ऊँचे मूल्य का डाक टिकट रहा है। एक तथ्य पाठकों के लिए और भी रोचक होगा कि श्रीलंका गवर्मेंट के डाक विभाग द्वारा शत्रुंजय मन्दिर पालीताना के चित्र वाली डाक टिकट को PERSONALISED STAMP के रूप में भी अपने देश की डाक टिकट के साथ छापा है तथा यह 6 डाक टिकटों का सेट एक शीट के रूप में छापा गया है। शीट के चारों ओर जैन मन्दिरों की नकाशी के साथ बॉर्डरों को सजाया गया है। डाक टिकट का विवरण LONDON में छपने वाले STANLEY GIBBONS CATALOUGE में SG No 324 तथा NEW YORK अमेरिका में छपने वाले SCOTT CATALOUGE में भारतीय डाक टिकटों के अंतर्गत No. 222 पर दिया गया है। ♦♦

डाक टिकटों पर जैन इतिहास

क्रमांक-4

(स्वतंत्र भारत)

■

सुरेश जैन, लुधियाना

■

बम्बई विश्वविद्यालय - राजाबाई जैन टावर

दिसम्बर 1957 में भारत के विश्वविद्यालयों, बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास की स्थापना की शताब्दी मनाई गई थी तथा तीनों विश्वविद्यालयों की एक ही समय पर एक-एक डाक टिकट जारी की गई थी। इनमें जो बम्बई विश्वविद्यालय पर डाक टिकट जारी की गई थी उस पर राजा बाई जैन टावर का चित्र छापा गया था। यह टावर बहुत दूर से दिखाई देने वाला, बड़ा सुन्दर डिजाइन किया हुआ ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान है। यह चर्चगेट रेलवे स्टेशन के समीप बम्बई विश्वविद्यालय के केम्पस में स्थित है। इसके नीचे विश्वविद्यालय की लाईब्रेरी की बड़ी सुन्दर तथा विशाल बिल्डिंग बनी हुई है जिसमें एशिया महाद्वीप में मिलने वाले सबसे सुन्दर, चमकदार तथा रँग-बिरँगे शीशे लगे हुए हैं। इस लाईब्रेरी में शताब्दी वर्ष 1957 में 169200 पुस्तकें थीं। 1500 हस्तलिखित Manuscripts अरबी, यूनानी व उर्दू भाषा में तथा 6000 हस्तलिखित Manuscripts संस्कृत में रखी हुई थीं। इस लाईब्रेरी के ऊपर बना हुआ क्लाकटावर राजाबाई जैन टावर के नाम से प्रसिद्ध है।

राजाबाई जैन टावर का निर्माण

इस क्लाकटावर को एक अंग्रेज भवन निर्माता Sir George Gilbert Scott ने लंदन इंगलैंड में बने Big Ben Clock Tower के डिजाइन के आधार पर फ्राँसिसी कारीगरों से बनवाया था। इसकी नींव का पत्थर 1 मार्च 1869 को रखा गया था। तथा यह 9 वर्ष बाद नवम्बर 1878 में बनकर तैयार हुआ था। इसको बनाने में मुख्य रूप से कुरला के रँगदार पत्थर तथा बर्मा की सागवान की लकड़ी का इस्तेमाल किया गया है। इसका धरती पर तल 68 फीट ऊँचा है। प्रथम तल 118 फीट ऊँचा है तथा ऊपर का भाग 94 फीट ऊँचा है। पूरे क्लाक टावर की ऊँचाई 280 फीट है। जिस समय यह बना था उस समय यह बम्बई का सब से ऊँचा निर्माण था।

उस समय बम्बई में श्री प्रेमचन्द रायचन्द जैन रहा करते थे। इनका परिवार बड़ा धार्मिक तथा सम्पन्न परिवार था। श्री प्रेमचन्द जी धनी होने के साथ-साथ बहुत बड़े दानी श्रावक थे। वे उस समय सूती धागे के प्रमुख स्टाक ब्रोकर थे। बम्बई युनिर्वसटी की लाईब्रेरी बनवाने के लिए उन्होंने बहुत बड़ा योगदान दिया था जो दो लाख रुपया था। जब बम्बई विश्वविद्यालय में क्लाक टावर बनवाने का प्रस्ताव आया तो श्री प्रेमचन्द रायचन्द जैन ने ब्रिटिश शासकों के सामने एक सुझाव रखा, यदि क्लाक टावर का नाम उनकी माता के नाम पर राजाबाई जैन टावर रखा जाये तो क्लाक टावर के बनने पर जितना धन

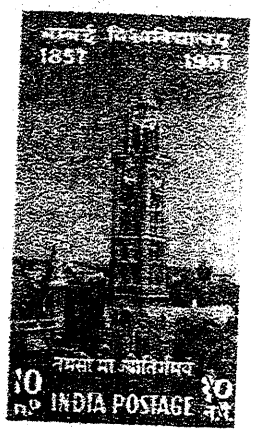

RAJA BAI JAIN TOWER
BOMBAY UNIVERSITY
31 December, 1957

खर्च होगा, वे पूरे का पूरा धन दे देंगे और उसके साथ ही बाम्बे स्टाक एक्सचेन्ज की स्थापना भी अपने खर्च से कर देंगे। उनके सुझाव को मान लिया गया तथा उन्होंने क्लाक टावर पर आने वाला सारा खर्च दो लाख रुपया दे दिया (इतना धन उस समय शाही खर्च कहलाता था) श्री प्रेमचन्द रायचन्द जैन को यह क्लाक टावर बनवाने का विचार इसलिए आया क्योंकि वे उस समय अपनी माता के लिए सबसे उपयुक्त उपहार समझते थे जो जीवन भर माता के काम आयेगा तथा मरणोपरान्त उनका नाम अमर कर देगा। उनकी माता श्रीमती राजाबाई उच्च धार्मिक विचारों वाली जैन महिला थी। वह संसार में रहती हुई भी बेहद संयमी जीवन व्यतीत करती थी। उसे जैन धर्म के सिद्धांतों में पूर्ण आस्था थी तथा उनका सख्ती से पालन करती थी। नित्य नियम में बड़ी पक्की महिला थी। इसे कुदरत की मार कहें या कर्म उसे आँखों से दिखाई देना बंद हो गया था। उनका जीवन भर के लिए रात्रिभोजन का त्याग था तथा वे सायंकाल 6 बजे भोजन कर लेती थीं, सुबह सूर्य उदय से पहले उठ कर अपने धार्मिक कार्यों व नित्य नियम में लग जाती थीं। क्लाक टावर बनने के बाद उनको बिना किसी की सहायता के टावर के ऊपर लगी हुई घड़ियों से बजने वाली घंटियों से समय का पता चलता रहता था। इस प्रकार वे समय अनुसार अपने सभी धार्मिक कार्य करती थीं।

डाक टिकट

इसी राजाबाई जैन टावर तथा लाईब्रेरी की बिल्डिंग के चित्र वाली एक डाक टिकट 31 दिसम्बर 1957 को शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में जारी किया गया था। इसका मूल्य 10 पैसे था। यह जामनी रंग का डाक टिकट 2635920 (छब्बीस लाख पैंतीस हजार नौ सौ बीस) संख्या में छापा गया था। इंगलैंड से छपने वाले Stanley Gibbons Catalouge में इसका विवरण SG No. 392 पर दिया गया है।

नोट : लेख में उस समय जहाँ-जहाँ बम्बई शब्द का प्रयोग हुआ है आज वह स्थान मुम्बई के नाम से जाना जाता है। कलकत्ता कोलकाता के नाम से तथा मद्रास-चेन्नई के नाम से जाना जाता है। ♦♦

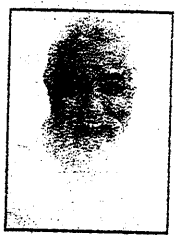

भगवान महावीर स्वामी केवल ज्ञानकल्याणक (20 मई 2013) तथा शासन स्थापना दिवस (21 मई 2013) पर गुरुभक्तों को बधाई। तपचक्रवर्ती तपस्वीसम्राट् आ.भ. श्रीमद् विजय वसन्त सूरीश्वरजी म.सा. के 45वें वर्षी तप पारणा अक्षय तृतीया (वैशाख सुदि तृतीया-13 मई 2013) के पावन अवसर पर पूज्य गुरुदेव को सादर वन्दन-अभिनन्दन।

शीतलप्रसाद जैन, सुरेन्द्रकुमार-सुशीला जैन, मनोज-प्रीति, मनीष-मीना सुकृति, यशवी, सृष्टि, मयूरी, ओजस जैन परिवार, बड़ौत (उ.प्र.)

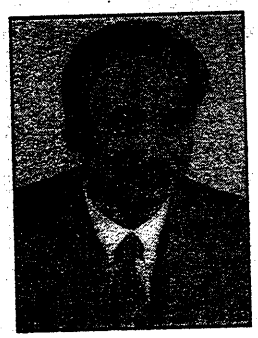

डाक टिकटों पर जैन इतिहास

क्रमांक-5

संत तिरुवल्लुवर

■

सुरेश जैन, लुधियाना

■

एक महान् कवि संत तिरुवल्लुवर के काल का अनुमान ईसापूर्व दूसरी अथवा पहली शताब्दी के मध्य में माना जाता है। मान्यता है कि उनका जन्म मयिलापुर चेन्नई में हुआ था परन्तु उनका अधिकांश जीवन मदुरै में बीता जहाँ पाड्य राजाओं द्वारा तामिल साहित्य को पोषित किया जाता रहा है। उनके दरबार में सभी जाने-माने विद्वानों को आश्रय दिया जाता था। संत तिरुवल्लुवर को शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन सभी अपना मतावलंबी मानते हैं। परन्तु तामिलनाडु में जैन धर्म के अनुयायी उनको महान् जैन आचार्य श्री कुन्द-कुन्द स्वामी जी मानते हैं जिनका सांसारिक नाम ही तिरुवल्लुवर था। यह संत बड़े सीधे-सादे, ज्ञान व चरित्र, तप व त्याग भरे जीवन के धनी, उच्च कोटि के विचारक, साहित्य प्रेमी, समाज सुधारक तथा बड़े विनम्र थे। उनका स्वभाव इतना सरल था कि उन्हें जीवन भर कभी गुस्सा ही नहीं आया। तामिल भाषा पर उनकी पूरी पकड़ थी। अपने ज्ञान भरे जीवन में उन्होंने व्यक्ति को जीवन की राह दिखाते हुए छोटी-छोटी ढेरों कविताएँ लिखी थीं। इनका संकलन **'तिरुक्कुरल ग्रंथ'** में किया गया है। यह एक ऐसा ग्रंथ है जो नैतिकता का पाठ पढ़ाता है। **'तिरुक्कुरल ग्रंथ'** को न केवल तामिल भाषियों में वरन् पूरे देश में श्रद्धा से पढ़ा जाता है। इसका गीता, बाईबल तथा कुरान के बाद विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में सबसे अधिक अनुवाद किया गया है। एक अध्ययन के अनुसार इस ग्रंथ की रचना चितंबूर में नेमिनाथ जैन मन्दिर में हुई थी। (परिचय जैन तीर्थ दर्शन पृष्ठ 121) **'तिरुक्कुरल ग्रंथ'** तीन खण्डों में बँटा है। पहला खंड ''अरम'' (आचरण/सदाचार) इसमें विवेक तथा सम्मान के साथ अच्छे नैतिक व्यवहार को बताया गया है। इस खंड में 38 अध्याय हैं। दूसरा खंड ''परूल'' (सांसारिकता संवृद्धि) सांसारिक मामलों की सही ढंग से चर्चा की गई है। इस खंड में 70 अध्याय है। तथा तीसरा खंड 'इनबम' (प्रेम/आनन्द) पुरुष तथा महिला के बीच संबंधों पर विचार किया गया है। इस खंड के 25 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में कुल 10 दोहे हैं। कुल मिलाकर कृति में 133 अध्याय व 1330 दोहे हैं।

गृहस्थ जीवन के बारे में उन्होंने जो एक अध्याय में दस दोहे लिखे हैं वे इस प्रकार हैं। जिसमें पारिवारिक जीवन की श्रेष्ठता और जीने की रीति का वर्णन किया है।

1.) एक परिवार के मुखियां का अनिवार्य कर्त्तव्य है - अपने माता-पिता और संतानों की देखभाल करना और रक्षा करना, उनका सहायक बनना।

2.) एक कुटुंब का नेता वही है, जो अनाथ, भूखे और साधु-संतों का सहायक बनता है और उनका साथ देता है। 3.) स्वर्ग सिधारे लोगों की याद रखना, अच्छे सुखी लोगों का यशोगान करना, अतिथि सत्कार करना, अपने नाते-रिश्तों की सहायता करना, अपने को भी सुखी और सुरक्षित रखना आदि एक परिवार के नेता का कर्त्तव्य है। 4.) एक पारिवारिक प्रधान को बुरे मार्ग पर धन कमाना अपयश प्रदान करता है, उसको अपने अपवाद होने का भय अनिवार्य रूप में होना चाहिए। उसको अपने भोजन को दूसरों में बाँटकर खाना चाहिए, यह भी पारिवारिक धर्म है। 5.) पारिवारिक जीवन का ऊँचा गुण प्यार और धर्म के गुणों को अपनाना है, ऐसे दाम्पत्य जीवन आदर्श मय हो जाता है। 6.) धर्म के बल पर जो परिपूर्ण जीवन बिता रहा है (वह अपने आदर्श जीवन के द्वारा ही) उसको जीवन का सारा फल अपने आप प्राप्त हो जाएगा। 7.) जो अपने पारिवारिक लक्षण और धर्म सहज में ही निभाता है, सुखी जीवन जीने के प्रयास में लगता है, वही कुटुंब का सर्वश्रेष्ठ प्रधान है। 8.) जो खुद अनुशासित जीवन बिताकर, दूसरों को भी अच्छी चाल-चलन सिखाकर अनुशासित मार्ग पर ले जाता है, वही अनासक्त साधुओं से श्रेष्ठ है। 9.) दूसरों के अपवादों से बचकर सुचारु रूप से सन्मार्ग पर जीना ही आदर्श पारिवारिक जीवन है। 10.) काल्पनिक देवताओं से श्रेष्ठ वही है, जो सांसारिक नीति-नियमों का अनुकरण करते हुए गृहस्थ जीवन बिताता है। इस महान् संत के सम्मान में भारत सरकार ने दो बार इनके चित्र वाला डाक टिकट छापा है। पहला डाक टिकट 15 फरवरी 1960 को 15 पैसे मूल्य का जारी किया गया था। लाल तथा जामनी रंग को मिलाकर गहरे गुलाबी रंग वाले इस डाक टिकट को 1,05,00,000 एक करोड़ पाँच लाख संख्या में छापा गया था।

दूसरा डाक टिकट विश्व शास्त्रीय तामिल सम्मेलन-कोई 2010 के अवसर पर 27 जून 2010 को इस महान् संत के चित्र वाला उनके तामिल साहित्य तथा तामिल काव्य के प्रति योगदान के लिए स्मारक डाक टिकट के रूप में जारी किया गया। जिस पर इनकी प्रतिमा का चित्र है। इस बहुरंगी डाक टिकट का मूल्य 5/- रुपये है।इन दोनों टिकटों का विवरण लंदन से छपने वाले STANLEY GIBBONS CATALOUGE तथा S.G.No. 342 में S.G.No. 2612 पर दिया गया है। दोनों टिकटें इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस द्वारा छापी गई थीं।

THIRUVALLUVAR
27 - 06 - 2010

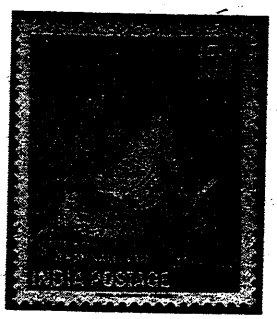

THIRUVALLUVAR
15 - 02 - 1960

डाक टिकटों पर जैन इतिहास

क्रमांक-6

विक्रम अम्बालाल साराभाई

■

सुरेश जैन, लुधियाना

■

जैन जगत् के चमकते सितारे, जिन पर समूचे जैन समाज को ही नहीं अपितु भारतवर्ष के हर प्राणी को गर्व है, संसार के प्रमुख एवं प्रसिद्ध अणु एवं अंतरिक्ष वैज्ञानिक डॉ. विक्रम साराभाई का जन्म एक बड़े ही समृद्ध एवं देश-भक्त जैन परिवार में 12 अगस्त 1919 को अहमदाबाद में हुआ। इनके पिता श्री अम्बालाल साराभाई कई मिलों के मालिक थे। धनाढ्य होने के साथ-2 इनके परिवार ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया। पिता महात्मा गाँधी के बहुत बड़े भक्त थे तथा हर प्रकार से उनको योगदान देते थे। माता सरला देवी साराभाई ने 1930 में गाँधी जी के दांडी यात्रा के समय महिलाओं का नेतृत्व किया था ('महिलाएँ और स्वराज्य'-लेखिका-आशारानी व्होरा-पृष्ठ 177) विक्रम साराभाई की बहिन मृदुला बेन साराभाई भी उस समय की प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी थी, अभी जवानी में उन्होंने कदम भी नहीं रखा था कि महात्मा गाँधी से प्रभावित होकर अपना घर छोड़कर गाँधी जी के नमक सत्याग्रह में शामिल हो गई। उस समय देश के सभी प्रमुख नेता अहमदाबाद में इनके घर पर ठहरा करते थे। उनमें से प्रमुख गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टेगोर, मोतीलाल नेहरू, जे. कृष्ण मूर्ति, मौलाना आज़ाद, जवाहर लाल नेहरू, सरोजनी नायडू, सी.वी. रमण इत्यादि बहुत से अन्य नेता हैं। एक समय महात्मा गाँधी जब गम्भीर बीमारी से ग्रस्त थे उस समय स्वास्थ्य लाभ लेने के लिए कुछ दिन इनके घर ठहरे थे। गाँधी जी के शब्दों में, "सेठ अम्बालाल अपनी नेक पत्नी के साथ नडियाड आये और बड़ी सावधानी पूर्वक मुझे अपने मिर्जापुर बंगला अहमदाबाद ले गये, वहाँ उन्होंने मेरी गम्भीर बीमारी की स्थिति में बड़े प्रेम पूर्वक तथा नि:स्वार्थ भाव से बड़ी सेवा की, ऐसी सेवा मिलनी मेरा परम सौभाग्य था (महात्मा गाँधी की आत्म कथा अध्याय XXVIII मृत्यु द्वार के समीप पृष्ठ 415) देश के प्रमुख नेताओं का अम्बालाल जी के घर आने के कारण बाल्यकाल से ही विक्रम साराभाई पर बड़ा गहरा प्रभाव था विक्रम साराभाई की प्रारम्भिक शिक्षा पारिवारिक स्कूल में हुई। गुजरात कॉलेज से इंटर तक विज्ञान की शिक्षा पूरी करने के बाद 1937 में कैम्ब्रिज विश्व विद्यालय इंग्लैंड के SAINT JOHN COLLEGE में आगे पढ़ने के लिए चले गये। यहाँ से इन्होंने 1940 में प्राकृतिक विज्ञान में ट्राइपोज़ डिग्री प्राप्त की (TRIPOS IN NATURAL SCIENCES) द्वितीय विश्वयुद्ध होने के कारण वे भारत लौट आये तथा भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर में नौकरी करने लगे जहाँ पर डॉ. सी.वी. रमण के निरीक्षण में कॉसमिक रे (COMIC RAY) पर अनुसंधान करने लगे।

शादी एवं परिवार : 1942 में विक्रम साराभाई की शादी जानी मानी कत्थक डांसर मृणालिनी के साथ मद्रास में हुई। महात्मा गाँधी के चलाये हुए भारत छोड़ो आन्दोलन में पूरा परिवार व्यस्त होने के कारण इनकी शादी में किसी परिवार जन ने भाग नहीं लिया। इनकी दो संतान हुई बेटी मल्लिका साराभाई जो बड़ी होकर भरतनाट्यम् तथा कुचीपुडी की प्रसिद्ध नृत्यांगना बनी। इसे 2010 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। बेटा कार्तिकेय जो देश को पर्यावरण क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान दे रहा है, इन्हें 26 जनवरी 2012 को पद्मश्री से सम्मानित किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध समाप्ति के बाद 1945 में वे कॉसमिक रे भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अपनी डाक्ट्रेट पूरी करने के लिए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय इंग्लैंड लौट गये तथा 1947 में COSMIC RAY INVESTIGATION IN TROPICAL LATITUDES पर अपने शोध ग्रंथ के लिए उन्हें डाक्ट्रेट की उपाधि से सम्मानित किया गया। इसके बाद वे भारत लौट आये। अपनी वैज्ञानिक गतिविधियों के साथ-साथ उन्होंने 1947 से 1962 तक कई पारिवारिक मिलों की जिम्मेदारी संभाली, कई नये उद्योग स्थापित किये तथा कई उद्योगों की गुणवत्ता के लिए कार्य किया। 1962 में डॉ. विक्रम साराभाई को भारत में अंतरिक्ष खोज के लिए अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान का चेयरमेन बनाया गया। इन्होंने अपने ज्ञान को देश की उन्नति के लिए समर्पित कर दिया। इन्होंने रॉकेट छोड़ने तथा अंतरिक्ष का अध्ययन करने के लिए THUMBA EQUATORIAL LAUNCHING STATION को बनवाने की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली तथा यहाँ से अन्तरिक्ष की नई से नई खोज की। इन्होंने FRENCH CENTAURE SOUNDING ROCKETS को भारत में निर्मित करवाने में सबसे बड़ा योगदान दिया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय रॉकेट रोहिणी तथा मेनका का निर्माण हुआ। भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की सफलता इसका प्रमाण है। रॉकेट प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाने के साथ देश में उपग्रह टेलीविजन प्रसारण के विकास में भी प्रमुख भूमिका निभाई। इनके निरीक्षण में 19 वैज्ञानिकों ने शोधकार्य करके डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने स्वतंत्र रूप से तथा अपने सहयोगियों से मिलकर राष्ट्रीय पत्रिकाओं में 86 अनुसंधान लेख लिखे। **डॉ. विक्रम साराभाई को भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का पितामह कहा जाता है।** महान् भारतीय अणुवैज्ञानिक डॉ. होमी भाभा की अकस्मात् हवाई हादसे में मृत्यु के बाद डॉ. विक्रम साराभाई को मई 1966 में ATOMIC ENERGY COMMISSION का चेयरमेन बनाया गया। वे बीस घंटे काम किया करते थे तथा नींद को भोगविलास (LUXURY) की वस्तु समझते थे। वे सदा अपनी गतिविधियों तथा ढेर सारी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए हर समय तत्पर रहते थे। वे देश में विज्ञान की शिक्षा के बारे में बहुत चिन्तित रहते थे, उसमें सुधार लाने के लिए उन्होंने सामुदायिक विज्ञान केन्द्रों की स्थापना की। उनमें कुछ संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं- कम्युनिटी साइंस सेन्टर CSC अहमदाबाद, थुम्बा इक्वेटोरियल रॉकेट लाउंचिंग स्टेशन TERLS तिरुवनंतपुरम्, स्पेस साइंस एण्ड टेक्नोलोजिक सेन्टर SSTC तिरुवनंतपुरम्, सैटेलाइट कम्यूनिकेशन अर्थ स्टेशन SCES यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड UCIL जादुगुड़ा (बिहार) वेरीऐबल एनर्जी साईक्लोट्रोन प्रोजेक्ट VECP कोलकाता, फास्टर ब्रीडर रिएक्टर FBT कलपक्कम्, टैक्सटाईल इन्डस्ट्री रिसर्च एसो ATIRA अहमदाबाद, फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी PRL अहमदाबाद, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमैंट IIM अहमदाबाद तथा अन्य अनेक संस्थाएँ बनवाईं। विक्रम साराभाई बड़े मृदुभाषी

व्यक्ति थे जिनके मन में दूसरों के प्रति असाधारण सहानुभूति थी, जो भी उनके संपर्क में आता वह उनसे प्रभावित हुए बिना न रहता। स्वभाव से वे कलाप्रेमी थे। संगीत, फोटोग्राफी, ललित कलाओं में उनकी रुचि थी। अपनी पत्नी मृणालिनी के साथ मिलकर उन्होंने मंथन कलाओं की संस्था दर्पण अकादमी फॉर परफार्मिंग आर्ट्स 1949 अहमदाबाद में बनवाई थी।

अंतरिक्ष की दुनिया में भारत को बुलन्दियों पर पहुँचाने वाले महान् वैज्ञानिक डॉ. विक्रम साराभाई की असमय मृत्यु केवल 52 वर्ष की आयु में 30 दिसम्बर 1971 को HYLCYON CASTLE कोव्वलम (केरल) में रात को सोते हुए हो गई जो आज तक एक रहस्य है। जबकि उन्हें दिल की कोई बीमारी नहीं थी। देश ने एक प्रतिभाशाली तथा महान् दूरदर्शी वैज्ञानिक को खो दिया। उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए उनको शांति स्वरूप भटनागर अवार्ड 1962 में, पद्मभूषण 1966 में तथा पद्म विभूषण (मरणोपरांत) 1972 में दिया गया। इनकी मृत्यु के बाद CSC का नाम विक्रम साराभाई कम्युनिटी सांइस सेन्टर अहमदाबाद रखा गया, TERLS तथा SSTC इन दोनों संस्थाओं को मिलाकर एक संस्था बना दी गई तथा उसका नाम विक्रमसाराभाई स्पेस सेन्टर तिरुवनंतपुरम् रखा गया। SCES का नाम विक्रम अर्थ स्टेशन रखा गया, यह इस महान् सपूत को देश की श्रद्धांजलि थी।

1974 में सिडनी में अंतरराष्ट्रीय खगोल विज्ञान संघ ने इनका एक अद्‌भुत सम्मान किया जो उन्हीं शब्दों में लिखा जा रहा है।

A unique honour was bestowed on the late Vikram Sarabhai when a recent meeting of the International Astronomical union in Sydney decided to name a moon crater after him, Now Crater Bassel longitude 21.0, Latitude 24.7) in the Sea of Serenity would be Known as SARABHAI CRATER (SKY AND TELESCOPE JOURNAL MARCH - 1974)

इसका अर्थ यह है कि चाँद के इस भाग का नाम अब साराभाई क्रेटर के नाम से जाना जायेगा।

विक्रम साराभाई पर दो डाक टिकट

ये प्रथम जैन श्रावक थे जिनके सम्मान में भारत सरकार ने इनकी पहली बरसी 30 दिसम्बर 1972 को एक डाक टिकट जारी की थी। 20 पैसे मूल्य के डाक टिकट पर इंग्लिश तथा हिन्दी में विक्रम अम्बालाल साराभाई लिखा है। हल्के भूरे तथा हरे रंग के इस डाक टिकट पर विक्रम साराभाई के चित्र की एक साइड पर 1919-1971 लिखा है तथा सामने की ओर वृक्षों के झुरमुट के पीछे THUMBA EQUATORIAL ROCKET LAUNCHING STATION से आकाश में ऊपर की ओर उठता हुआ रोहिणी रॉकेट चित्रित है और रॉकेट के साथ शांति का प्रतीक सफेद कबूतर मुँह में बाली लेकर उड़ रहा है।

यह डाक टिकट इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस द्वारा 30 लाख संख्या में छापी गई थी।

एक अन्य बहुरंगी जुड़वाँ डाक टिकट (SETENENT PAIR) भारतीय विज्ञान संस्थान (INDIAN INSTITUTE OF SCIENCE) के शताब्दी समारोह पर 14 दिसम्बर 2008 को जारी की गई थी। 2000 पैसे मूल्य के डाक टिकट पर भारत के प्रमुख वैज्ञानिकों के चित्र छपे हैं। इसमें सबसे ऊपर बाईं ओर डॉ. विक्रम साराभाई का चित्र छपा है। 500 पैसे मूल्य के जुड़वाँ डाक टिकट पर संस्थान का चित्र छपा है। दोनों टिकटों के ऊपर 1909-

2009 लिखा है। नीचे जारी करने का सन् 2008 लिखा है। इन जुड़वाँ डाक टिकटों को एक MINIATURE SHEET के रूप में छापा गया है जिसके चारों ओर बोर्डर पर विभिन्न आविष्कारों के चित्र दिये गये हैं। 1940 में इंग्लैंड से वापिस आने के बाद डॉ. विक्रम साराभाई ने बंगलौर के इसी संस्थान में कॉसमिक रे पर अनुसंधान किया था। यह जुड़वाँ डाक टिकट इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस द्वारा 15 लाख संख्या में छापा गया है तथा MINIATURE SHEET को दो लाख संख्या में छापा गया है। इन टिकटों का विवरण इंग्लैंड से छपने वाले STANLEY GIBBONS CATALOUGE में SG No 562 तथा SG No 2423, 2424, 2424A, 2425, 2426 पर दिया गया है।

Vikram Ambalal Sarabhai
30-12-1972

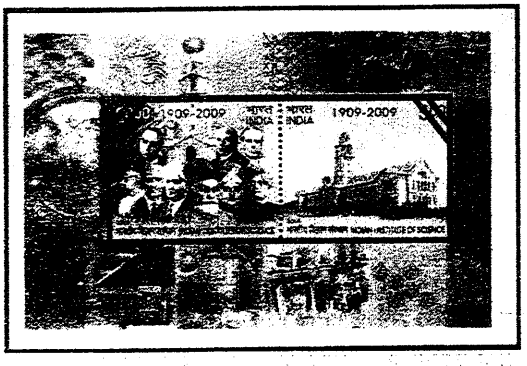

Vikram Sarabhai (Top Left)
With other Scientists who were associated with Indian Institute of Science
14-12-2008

भगवान महावीर 2500 वां निर्वाण दिवस व पावापुरी

-सुरेश जैन

वर्तमान चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म पिता राजा सिद्धार्थ के घर, माता रानी त्रिशला की कोख से ईसा पूर्व 599 चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भारत की पावन धरती पर हुआ। आज इतने वर्षों बाद भी भगवान् महावीर का नाम उसी श्रद्धा व भक्ति से स्मरण किया जाता है। इस का मूल कारण यह है कि भगवान महावीर ने इस जगत को न केवल मुक्ति का संदेश दिया अपितु मुक्ति का सरल तथा सच्चा मार्ग भी दिखाया। उन्होंने राजसी ठाठ व भोग विलास की दलदल में कमल के समान प्रारंभिक तीस वर्ष गुजारे। मध्य के 12 वर्ष 6 मास 15 दिन घनघोर जंगल में मंगल साधना व आत्म जागृति की आराधना करके केवल ज्ञान प्राप्त किया। आयु के बाकी 29 वर्ष 5 मास 15 दिन प्राणी मात्र के कल्याण व मुक्ति मार्ग की प्रशस्ति में व्यतीत किए।

जन कल्याण के लिए उन्होंने चार तीर्थों साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका की रचना की। इन सर्वोदयी तीर्थ में क्षेत्र, काल, समय या जाति की सीमाएं नहीं थी। भगवान महावीर का आत्म धर्म जगत की प्रत्येक आत्मा के लिए समान था। संसार में सभी आत्माएं एक समान हैं, इसलिए हम दूसरों के प्रति वहीं विचार व व्यवहार रखें जो हमें स्वयं को पसंद हो। यहीं महावीर का 'जीओ और जीने दो' का सिद्धांत है। उन्होंने आत्मिक और शाश्वत सुख प्राप्ति के लिए हमें पांच सिद्धांत बताए। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य तथा ब्रह्मचर्य।

पावापुरी : पावापुरी जिस का प्राचीन नाम अपापापुरी अर्थात् पापरहित पुण्यभूमि था। यह क्षेत्र प्राचीन काल में मगधदेश के अंतर्गत एक शहर था। इस समय बिहार प्रदेश के जिला नालंदा का यह एक गांव है। पावापुरी में भगवान् महावीर द्वारा धर्म संघ तीर्थ की स्थापना हुई थी। उस समय के बहुत ही विद्वान 11 व्यक्तियों ने अपने शिष्यों सहित भगवान महावीर के आगे दीक्षा ली थी तथा वे 11 गणधर कहलाए थे। पावापुरी की पवित्र धरती पर भगवान ने अंतिम देशना दी थी। पावापुरी की पवित्र धरती पर ही भगवान महावीर का निर्वाण हुआ था।

भगवान महावीर की अंतिम देशना व निर्वाण : भगवान महावीर ने अपने जीवन का 41वां वर्षावास राजगृह में संपन्न किया। इस के पश्चात् राजा हस्तिपाल की भावभरी प्रार्थना स्वीकार कर अपापापुरी अर्थात् पावापुरी पधारे तथा राजा हस्तिपाल की रज्जुगशाला में ठहरे थे। पावापुरी में ही भगवान ने अपने जीवन का 42वां वर्षावास आरंभ किया। चातुर्मास काल के तीन मास 14 दिन व्यतीत हो गए। अब भगवान का निर्वाण समय निकट आया जानकर अंतिम देशना के लिए विशिष्ट समवसरण की रचना की गई। अनगणित देवों के अतिरिक्त काशी कौशल देश के नौ लिच्छवी नौ मल्लवी आदि 18 गणराजा पौषध व्रत युक्त प्रभु की अंतिम धर्म देशना का श्रवण करने व हजारों की संख्या में श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविकाएं उनकी दिव्य देशना सुनने के लिए इकत्रित हुए। भगवान दो उपवासों के साथ समवसरण में

सुशोभित हो अपना ज्ञानामृत श्री विपाक सूत्र के पुण्य फल के 55 अध्ययन तथा पाप फल के 55 अध्ययन और श्री उत्तराध्ययन के समस्त 36 अध्ययन कहे।

प्रभु धर्म-देशना का निरंतर उद्योत करते हुए ईसा से 528 वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि को नश्वर देह का त्याग कर सिद्ध बुद्ध व मुक्त हो गए। दिव्य ज्योति ज्ञानाद्योत विकीर्ण कर सहसा विलीन हो गई। कार्तिक अमावस्या की सधन रात्रि में ज्ञान का वह दिव्य भास्कर निर्वाणोपलब्ध हो गया। तत्क्षण देवगण व राजा आदि ने मणि-रत्नों के प्रकाश से समस्त भूमंडल को प्रकाशित कर दिया। प्रभु का निर्वाणोत्सव मनाया गया। संपूर्ण पावापुरी जगमगाने लगी। दीपावली का त्योहार मनाने की प्रथा महावीर के निर्वाण दिवस के रुप में प्रारंभ हुई।

पावापुरी जल मंदिर : जिस जगह भगवान का निर्वाण हुआ वह चौरासी बीघे का समतल क्षेत्र था। भगवान का निर्वाण होने पर उपस्थित जन समूह ने भक्ति भाव से विह्वल हो इस स्थान से धूल लेकर मस्तक पर धारण की। हर एक ने एक-एक चुटकी धूल ली पर भीड़ इतनी अधिक थी कि एक-एक चुटकी धूल लेने से ही वहां सरोवर बन गया।

इस सरोवर के मध्य में श्वेत संगमरमर का एक जैन मंदिर है जो जल मंदिर कहा जाता है। अनुमानतः इस मंदिर का निर्माण भगवान महावीर के निर्वाण के बाद उनके बड़े भाई राजा नंदीवर्धन ने अंतिम देशना स्थल व अंतिम संस्कार स्थल पर चौंतरे बनवाकर प्रभु के चरण स्थापित किए थे जो आज गांव मंदिर व जल मंदिर माने जाते हैं। जल मंदिर में चरण पादुकाओं पर कोई लेख उत्कीर्ण नहीं है। समय-समय पर इस मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ। इस समय जो पूरा संगमरमर का मंदिर बना हुआ है, उसे कोलकाता के सेठ पूना चंद सेठिया ने सन् 1923 में बनवाया था जो कि ठीक उसी स्थान पर बनाया गया है जिस जगह पर भगवान महावीर के बड़े भाई राजा नंदीवर्धन ने मंदिर बनवाया था। जीर्णोद्धार के समय प्रकाश में आई बड़ी-बड़ी ईंटें इसके अढ़ाई हजार वर्ष प्राचीन होने का प्रमाण देती हैं।

मंदिर तक पहुंचने के लिए लाल पत्थर का एक सुंदर पुल बना हुआ है। मंदिर के गर्भ गृह में विराजमान तीन युगल चरण चिन्हों में मध्य में भगवान महावीर के, बाईं ओर गौतम स्वामी के व दाईं ओर सुधर्मा स्वामी के हैं। गर्भ गृह के बाहर चारों ओर बरामदा है। मंदिर के नीचे एक सुंदर सरोवर है जो कि इस समय मात्र दो फरलांग लम्बा व लगभग इतना ही चौड़ा रह गया है। जब सरोवर कमल के फूलों से भरा हुआ होता है तब अत्यंत सुंदर दृश्य दिखाई देता है।

पावापुरी जल मंदिर पर डाक टिकट : भगवान महावीर का 2500वें निर्वाण दिवस पर भारत सरकार के डाक विभाग ने एक स्मारक डाक टिकट 13 नवम्बर 1974 को पावापुरी जल मंदिर के चित्र वाली नील कृष्ण रंग में जारी की थी। 25 पैसे मूल्य वाले इस डाक टिकट को 30 लाख संख्या में बिना जलचिन्ह वाले कागज पर फोटोग्रेव्योर मुद्रण प्रक्रिया से भारत प्रतिभूति मुद्रणालय में छापा गया। इसका डिजाइन श्री विनय सरकार ने बनाया। इस डाक टिकट का विवरण न्यूयार्क अमेरिका में छपने

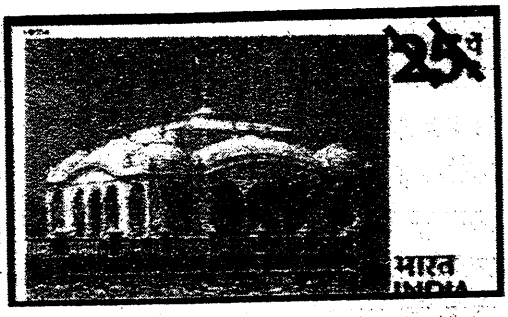

वाले SCOTT CATALOUGE में नंबर 640 पर तथा लंदन इंगलैंड से छपने वाले STANLEY GIBBONS CATALOUGE में एस.जी. नंबर 622 पर दिया गया है। टिकट का डिजाइन। डाक टिकट के बाईं ओर पावापुरी जल मंदिर का चित्र है, दाईं ओर 25 पैसे मूल्य लिखा है। नीचे भारत तथा INDIA लिखा है। सबसे नीचे दो लाइनों में इस प्रकार लिखा है : भगवान महावीर की 2500वीं निर्वाण वर्षगांठ। BHAGWAN MAHAVIR 2500TH NIRVANA ANNIVERSARY.

भगवान महावीर पर डाक टिकट (विदेश) : HAMBOLDT UNIVERSITY-BERLIN ने 23 मई से 30 मई 1979 तक INTERNATIONAL ASSOCIATION OF SANSKRIT STUDIES (IASS) के तत्वावधान में चतुर्थ विश्व संस्कृत सम्मेलन आयोजित किया था। यह सम्मेलन जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक के शहर में आयोजित किया गया था। भारतवर्ष के बाहर होने वाला यह संस्कृत का सबसे बड़ा सम्मेलन था। इस अवसर पर जी.पी.आर. ने भारत के चार लघु चित्रों (MINIATURE PAINTINGS) पर डाक टिकटें जारी की थीं। उसमें एक बहुरंगी डाक टिकट जिसका मूल्य 35 पैसे है, उस पर भगवान महावीर का बहुत सुंदर चित्र छपा है। यह अनुमानित 15वीं/16वीं शताब्दी के लघु चित्र से लिया गया गै। यह पहली डाक टिकट है जो जैन तीर्थंकर पर विदेश में जारी की गई। इस डाक टिकट का परिचय STANLEY GIBBONS CATALOGUE में EAST GERMAN के अन्तर्गत ई 2129 पर दिया गया है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन-विश्व तेलगू सम्मेलन

जैन सरस्वती देवी

-सुरेश जैन लुधियाना

विद्या, ज्ञान, भाषा, आविष्कार, बुद्धि, साहित्य, संगीत, कला की देवी को सरस्वती देवी कहते हैं। देवी सरस्वती की हजारों प्रतिमाएं हंस पर सवार हाथ में वीणा लिए हुए देश के हर भाग में मिल जाएंगी। मूर्तियों में सरस्वती देवी के चार हाथ दर्शाएं जाते हैं, दो हाथ में वीणा, भाव संचार व कलात्मकता संगीत की प्रतीक है। तीसरे हाथ में पुस्तक विचारण व ज्ञान की प्रतीक है तथा चौथे हाथ में माला ईशनिष्ठा सात्विकता की प्रतीक है। भारतीय परम्परा में ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी मां सरस्वती स्वीकार की गई है। सरस्वती देवी के कई नाम भारतीय साहित्य में मिलते हैं, जैसे वाग्देवी, श्रुतदेवी, भारती, वागीश्वरी, वरदा, शारदा, वाणी, भाषा, गौ आदि। यह अनुमान लगाना कठिन है कि सरस्वती की प्राचीनतम मूर्ति कौन सी है। फिर भी पुरातत्त्वविदों के अनुसार मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त सरस्वती की मूर्ति सबसे प्राचीन मानी गई है।

शिक्षा का जन-जन में उत्साह भरने, हर बात को गंभीरता पूर्वक समझने के लिए, पशु को मनुष्य बनाने के लिए, भौतिक प्रगति की प्राप्ति के लिए शिक्षा की देवी सरस्वती का आशीर्वाद आवश्यक है। मंद बुद्धि इंसान को वनमानुष से मनुष्य देवी सरस्वती ही बनाती है। कहते हैं, महाकवि कालीदास, वरदराजाचार्य, वोपदेव आदि मंद बुद्धि के व्यक्ति देवी सरस्वती की उपासना तथा उनके द्वारा दिए गए विद्या के आशीर्वाद से उच्चकोटि के विद्वान बने थे। देवी सरस्वती ज्ञान देती है कोई पूरे उत्साह के साथ अध्ययन करता हुआ अपनी मस्तिष्कीय क्षमता को सुविकसित करने में सफल होता है।

जैन परम्परा में द्वादशांग वाणी को श्रुतदेवी के रूप में स्मरण किया गया है। जिनवाणी सरस्वती, वाग्देवी, श्रुतदेवी को लेकर प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में अनेक प्रकार की प्रार्थनाएं लिखी गई है। कई जैन पुस्तकों में देवी के चित्र मिलते हैं तथा देवी सरस्वती का वर्णन आता है। देवी सरस्वती की बहुत सी आकर्षित प्रतिमाएं भारत वर्ष के बहुत से जैन मंदिरों में सुशोभित हैं तथा इनमें से कुछ प्रतिमाएं देश तथा विदेश में संग्रहालयों में पहुंच चुकी है। जैन परम्परा में सरस्वती को श्रुत की देवी होने से श्रुत देवी और वाणी की देवी होने से वाग्देवी कहा गया है। श्रुत देवी, वाग्देवी या जैन सरस्वती के चार हाथों में कमल-अंतरदृष्टि, अक्षमाला-वैराग्य, शास्त्र-ज्ञान तथा कमण्डलु-संयम के प्रतीक है। जैन सरस्वती के मस्तक पर छोटी सी जिन प्रतिमा होती है जो जैन सरस्वती की पहचान है।

इसी प्रकार की जैन सरस्वती देवी की एक प्रतिमा जो कि अपने पांव पर खड़ी है, जैन मंदिर, गांव पल्लु, जिला बीकानेर, राजस्थान से प्राप्त हुई थी, जो इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संगृहीत

है। इसी जैन सरस्वती की हूबहु एक प्रतिमा ब्रिटिश म्यूज़ियम, लंदन में संगृहित है। यह मूर्ति सरस्वती मंदिर धार, मध्यप्रदेश से लंदन ले जाई गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों मूर्तियां एक ही शिल्पकार द्वारा एक ही समय में बनाई गई थी। यह प्रतिमाएं 12वीं शताब्दी की है।

भारतवर्ष में हर वर्ष साहित्य में दिया जाने वाला सर्वोच्च सम्मान व पुरस्कार जिस को 'ज्ञान पीठ पुरस्कार' कहते हैं, वह इसी मूर्ति की छवि के रूप में पुरस्कार विजेता को दिया जाता है। सरस्वती देवी का जन्म उत्सव बड़ी श्रद्धा से बसंत पंचमी के दिन मनाया जाता है।

जैन सरस्वती देवी पर डाक टिकट : भारत के राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में रखी हुई जैन सरस्वती देवी की मूर्ति के चित्र वाली डाक टिकट भारत सरकार के डाक विभाग ने ई. सन् 1975 में दो बार जारी की थी। पहली डाक टिकट 10 जनवरी 1975 को विश्व हिन्दी सम्मेलन जो कि नागपुर (महाराष्ट्र) में हुआ था उस अवसर पर जारी की थी। डाक टिकट की पृष्ठ भूमि पर गहरे लाल रंग के ऊपर हिन्दी भाषा के बड़े सुंदर शब्द अंकित हैं। जैन सरस्वती देवी की मूर्ति जो कि खड़ी मुद्रा में है उसे सलेटी रंग में दर्शाया गया है। डाक टिकट का मूल्य 25 पैसे है इसे 30 लाख संख्या में छापा गया था। इसका विवरण लंदन, इंग्लैंड से छपने वाले सटेनले गिबंण्स केटालाग में एसजी नंबर 630 पर दिया गया है।

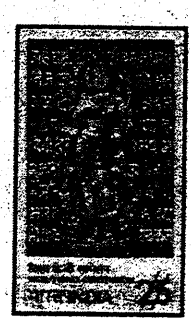

दूसरी डाक टिकट इसी जैन सरस्वती देवी की प्रतिमा के चित्र वाली 12 अप्रैल 1975 को विश्व तेलगू भाषा सम्मेलन के अवसर पर जारी की गई थी। यह सम्मेलन हैदराबाद (आंध्रप्रदेश) में हुआ था। इस डाक टिकट की पृष्ठ भूमि को गहरे नीले तथा हरे रंग को मिला कर बनाया गया है तथा पृष्ठ भूमि पर तेलगू भाषा के सुंदर शब्दों को अंकित किया गया है। जैन सरस्वती देवी की मूर्ति को काले रंग में दर्शाया गया है। डाक टिकट का मूल्य 25 पैसे है इसे भी 30 लाख संख्या में इंडिया स्कयोरिटी प्रिंटस द्वारा छापा गया था। इस डाक टिकट का विवरण लंदन, इंग्लैंड से छपने वाले सटेनले गिंब्णस केटलाग में एसजी नंबर 636 पर दिया गया है।

डाक टिकटों पर जैन इतिहास-9

भारत के संग्रहालय में
ऐरावत हाथी व कल्पद्रुम अथवा कल्पवृक्ष

-सुरेश जैन

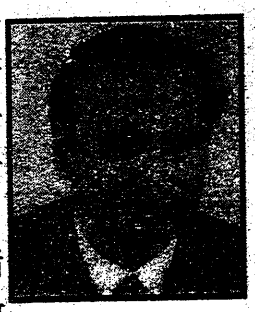

देवलोक में देवगण ही हाथी-घोड़ा आदि का रूप धारण कर के सेना के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ऐरावत इसी प्रकार का एक हाथी है। इन्द्र महाराज की चतुर्विध सेना में जो गजसेना है, ऐरावत उस सेना का अधिपति माना जाता है। इसीलिए उसे 'हस्ती-राजा' भी कहते हैं। श्री स्थानाङ्ग जी सूत्र में कहा गया है-'ऐरावणे हत्थिराया कुंजराणीयाहि वई'!

अर्थात् गजराज ऐरावत कुञ्जरसेना का अधिपति है। हाथियों में कई जातियां होती हैं, उन सब में ऐरावत हाथी सबसे श्रेष्ठ-सर्वश्रेष्ठ माना गया है कि जैसे समस्त हाथियों में ऐरावत उत्तम है, उसी प्रकार भगवान सब महापुरुषों में उत्तोत्तम हैं। इन्द्र महाराज जब तीर्थङ्कर भगवान के जन्मोत्सव को मनाने के लिए आते हैं तो ऐरावत पर सवार होकर ही आते हैं, भगवान को उसी पर विराजमान करके सुमेरू-पर्वत पर अभिषेक के लिए ले जाते हैं। धन्य-धन्य है वह गजराज ऐरावत जिसे अपने ऊपर भगवान को आरूढ़ करने का सौभाग्य सम्प्राप्त होता है।

ऐरावत का वर्णन न केवल जैन साहित्य में आता है अपितु प्राचीन हिन्दु साहित्य तथा बौद्ध साहित्य में भी आता है। ऐरावत को वैदिक इन्द्र का वाहन भी माना जाता है।

प्रारंभिक 19वीं शताब्दी का लकड़ी के ऊपर बहुत खूबसूरत नकाशी किया हुआ पौराणिक ऐरावत श्वेत हाथी जिस के सात सूंड हैं, जो एक पहियेदार गाड़ी पर सवार है इसे गुजरात क्षेत्र के एक जैन मंदिर से लिया गया है। यह जैन मंदिर लकड़ी की नक्काशी और काष्ठ की वास्तुकला के लिए सुप्रसिद्ध है। इस समय इस ऐरावत को कच्छ संग्रहालय-भुज (गुजरात)में सुरक्षित रखा गया है। इस संग्रहालय की स्थापना प्राचीन स्मारक सुरक्षा अधिनियम (1904) के फलस्वरूप हुई थी।

ऐरावत हाथी पर डाक टिकट : भारतीय संग्रहालयों पर डाक टिकट की सिरीज़ के लिए विषयों का चयन करने में डाक-तार विभाग ने सहस्त्राब्दियों के भारतीय इतिहास का ही नहीं अपितु इसके लिए देश के विभिन्न भागों से विविध कलात्मक अभिव्यक्तियों का भी अवलोकन किया था। भारत के संग्रहालय डाक टिकट 1978 के अंतर्गत संग्रहालयों में पड़ी हुई धरोहर के रूप में चार डाक टिकटों का एक सेट जारी किया गया था। जिसमें 25 पैसे के डाक टिकट के ऊपर कुछ संग्रहालय-भुज में सुरक्षित ऐरावत हाथी का चित्र दिया गया है। यह बहुरंगी डाक टिकट 27-7-1978 को भारत प्रतिभूति मुद्रणालय से छपवा कर 50 लाख संख्या में जारी किया गया था। इस का विवरण लंदन इग्लेंड से छपने वाले में **STANLEY GIBBONS CATALOUGE** में नंबर **SG** 764 पर दिया गया है।

कल्पद्रुम अथवा कल्पवृक्ष : इस वृक्ष का वर्णन प्राय: समस्त प्राचीन धर्मों के ग्रंथों में आता है। भोगभूमिज जीवों को सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री प्रदान करने वाले वृक्ष 'कल्पवृक्ष' कहलाते हैं। इनका अपार नाम 'सरतरू' भी है। यहां पर जैन साहित्य की दृष्टि से दस प्रकार के कल्पवृक्षों का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है-

1. **मद्यांग वृक्ष :** मधुर सुस्वादु और पौष्टिक रस प्रदान करने वाले।
2. **भृताङ्ग वृक्ष :** विविध प्रकार के पात्र-भाजन प्रदायक वृक्ष।
3. **तूर्याङ्ग वृक्ष :** आमोद-प्रमोद के लिए विभिन्न वादित्र प्रदायक वृक्ष।
4. **दीपाङ्ग वृक्ष :** अपनी शाखा-प्रशाखाओं से दीपकवत् प्रकाश फैलाने वाले वृक्ष।
5. **ज्योतिष्ठ वृक्ष :** सूर्य अथवा अग्निवत् उष्णता प्रदान करने वाले वृक्ष।
6. **चित्राङ्ग वृक्ष :** विविध वर्णों के पुष्प देने वाले।
7. **चित्ररस वृक्ष :** विभिन्न प्रकार का स्वादिष्ट भोजन देने वाले वृक्ष।
8. **गेहागार वृक्ष :** मकान की तरह आश्रय प्रदान करने वाले वृक्ष।
9. **अनग्न वृक्ष :** वस्त्राभाव की पूर्ति करने वाले वृक्ष।
10. **मण्यङ्ग वृक्ष :** मणिरत्न आदि की तरह विविध चमकदार आभूषणों के प्रदायक वृक्ष।

डाक टिकट का डिज़ाइन : डाक टिकट पर जिस 'कल्पद्रुम' अथवा 'कल्पवृक्ष' का चित्र दिया गया है यह दूसरी शताब्दी की अद्‌भुत मूर्तिकला की कृति है। किसी समय यह मध्यप्रदेश के किदिशा जिले के बेसनगर में किसी स्तंभ का शीर्ष था। इस समय यह भारतीय संग्रहालय कोलकत्ता में सुरक्षित है। कल्पद्रुम की कल्पना एक ऐसे वृक्ष के रूप में की गई है जो समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला और समस्त विधियों का देने वाला है, जैसे कि शंख, पद्म,दो कलश, जिन से लगातार मुद्राएं गिर रही है व चार थैलियां जिनको रस्सियों से बांधा है। जिस स्तंभ का यह शीर्ष भाग है वह धनपति कुबेर के किसी मंदिर की शोभा रहा होगा।

कल्पद्रुम अथवा कल्पवृक्ष पर टाक टिकट : इसी श्रंखला में जो दूसरी डाक टिकट जारी की गई थी वह इसी कल्पवृक्ष के चित्र वाली एक बहुरंगी डाक टिकट है जिस का मूल्य 50 पैसे है इसे 27-7-1978 को 30 लाख संख्या में छपवा कर जारी किया गया था। इस का विवरण **SG** नंबर 765 पर दिया गया है।

पाठकों की जानकारी के लिए इसी श्रंखला में जो तीसरी डाक टिकट एक रुपये मूल्य की जारी की गई थी उस पर पहली शताब्दी के सोने के एक कुषाण सिक्के के दोनों पहलू दिखाए गए हैं। यह सिक्का इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है। इसी श्रृंखला की जो चौथी डाक टिकट छापी गई है उसका मूल्य दो रुएए हैं। उस पर 17वीं शताब्दी की मुगलकारी पर आधारित बहुत से बहूमुल्य रत्न जड़ित मुगल सम्राट जहांगीर की एक कटार तथा उनकी बेगम नूरजहां का एक छुरा है। यह दोनों हथियार इस समय सालारजंग संग्रहालय हैदराबाद में सुरक्षित हैं।

डाक टिकटों पर जैन
इतिहास क्रमांक : 10

गोम्मटेश्वर (भगवान बाहुबली)

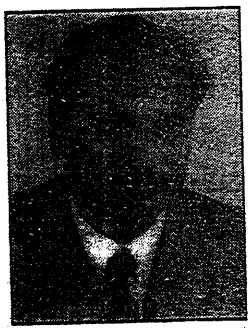

■

सुरेश जैन, लुधियाना

■

गोम्मटेश्वर, गोम्मट+ईश्वर, गोम्मट शब्द संस्कृत में सौंदर्य एवं काम का द्योतक है अत: प्रथम कामदेव भगवान (ईश्वर) बाहुबली गोम्मटेश्वर भी कहलाते हैं। बाहुबली सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य समन्वित होने के कारण जैनागमों में कामदेव रूप से भी प्रख्यात हैं।

बाहुबली प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव के पुत्र थे। इन्होंने पाप वासनाओं को निर्मूल करने के उद्देश्य से विशाल साम्राज्य का त्याग कर के कठोरतम तपस्या की। इतना भीषण तप किया कि सम्पूर्ण जगत् चकित हो उठा। एक वर्ष पर्यन्त एक आसन से खड़े रहे। शरीर पर लताएँ लिपट गईं, बिच्छु, सर्प आदि भयङ्कर जन्तुओं ने शरीर को अपनी मानों क्रीड़ाभूमि बना लिया, फिर भी वे महापुरुष आत्मस्थ ही बने रहे और अन्त में शाश्वत केवलज्ञान का वरण कर आत्म-साम्राज्य के अधिपति बन गए। 10वीं शताब्दी में चामुंडराय जी कर्नाटक राज्य के सम्राट् गंगराज श्री रच्चमल के प्रधान मंत्री एवं प्रमुख सेनापति थे। उनकी माता ने अपने पुत्र चामुंडराय से इच्छा व्यक्त की, कि वह चाहती है कि उसे सुबह उठते ही सामने की पहाड़ी पर भगवान बाहुबली के दर्शन हों। माता की इच्छापूर्ति के लिए आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी के मार्गदर्शन में बड़े-बड़े शिल्पकारों को बुलाया गया। उनमें सबसे उत्तम तथा मेहनती शिल्पकार अरिष्टनेमि था। उसे पहाड़ के सीने पर ग्रेनाइट की एक बहुत बड़ी चट्टान में से भगवान बाहुबली की प्रतिमा बनाने का काम सौंपा गया। चामुंडराय के साथ मूर्ति बनाने का जो पारिश्रमिक तय हुआ वह था कि मूर्तिकार ग्रेनाइट की चट्टान को अपनी छैनी हथौड़ी से मूर्ति बनाते समय जितना बेकार पत्थर निकालेगा उसके बराबर वजन का सोना उसे दिया जायेगा। जब शिल्पकार अरिष्टनेमि प्रथम सोने के भार को गड्डे पर लाद कर बड़ी प्रसन्नता तथा मान के साथ अपनी माँ के पास लाया, वह अपनी माँ को सोना दिखाते हुए फूला नहीं समा रहा था। उसकी माँ बड़े विस्मय एवं दु:ख के साथ आचार्य नेमिचन्द्र जी के पास पहुँची तथा सारी बात उनको सुनाई। आचार्य नेमिचन्द्र जी की शिक्षा के अनुसार वापस घर जाकर अपने बेटे को कहा, "पुत्र ! तुम अपने सोने के लालच तथा मान को त्याग दो-देखो एक बेटा अपनी माँ को भगवान के दर्शन करवाने के लिए सोने से छुटकारा पा रहा है और कहाँ तू मेरा बेटा, उस सोने के लालच में पत्थर का बुत बना रहा है न कि भगवान

की मूर्ति। तुम्हारे सामने चामुंडराय की कुर्बानी का उदाहरण है- तुम सोने का लोभ-लालच तथा अपने अभिमान को छोड़कर इस पत्थर में इतनी जान डाल दो कि इसमें से स्वयं भगवान बाहुबली के तुझे दर्शन हों।''

अरिष्टनेमि के चेहरे पर पछतावे के भाव आये, उसकी आँखों से आँसू उसके गालों पर गिरने लगे, उसने अपने मन से सोने का लोभ तथा लालच त्याग दिया। इसके उपरांत शिल्पकार की छैनी-हथौड़ी ने चमत्कार कर दिखाया, उसने चट्टान में से एक पीस की विशालकाय प्रतिमा पूरी चट्टान को चीर कर बना डाली तथा विंध्यगिरी पहाड़ी पर साक्षात् भगवान बाहुबली के दर्शनों के लिए मूर्ति तैयार कर दी।

प्रतिमा बनाते हुए अरिष्टनेमि की परीक्षा !

एक बार अरिष्टनेमि शिल्पकार की माता ने ऐसा महसूस किया कि उसका बेटा हर समय मूर्ति की सुन्दरता और भव्यता की ही बात करता रहता है, क्या वास्तव में ऐसा है या नहीं? इस बात की परीक्षा करने के लिए माता एक दिन दोपहर का भोजन लेकर विंध्यगिरी पहाड़ी पर गई। उस दिन उसने सब्जी में नमक नहीं डाला अपितु नमक की कटोरी अलग से साथ ले गई। वहाँ माता ने अरिष्टनेमि को भोजन करने के लिए पुकारा, वह हाथ धो कर भोजन करने बैठ गया, भोजन करते समय उसका ध्यान केवल मूर्ति की तरफ था, वह बिना नमक वाली सब्जी के साथ सारी रोटी खा गया। उसकी माँ कभी उसे रोटी खाते देखती, कभी नमक वाली कटोरी को देखती जिसे वह साथ लाई थी। खाना खाने के बाद अरिष्ट नेमि ने माँ से कहा, ''माँ ! मैंने इतना स्वादिष्ट भोजन अपनी सारी जिन्दगी में नहीं खाया जितना स्वादिष्ट भोजन माँ आप आज बना कर लाई हैं, इतना ही भोजन आज और ले आती ''तो मैं वह भी खा लेता।'' अरिष्टनेमि की माता ने उसे नमक की कटोरी दिखाते हुए कहा, ''बेटा ! आज तो मैंने भोजन में नमक ही नहीं डाला था। आज मुझे पता चल गया है कि आज का भोजन स्वयं भगवान बाहुबली ने तेरे लिए तेरी इच्छा के अनुकूल स्वादिष्ट बना दिया। बेटा ! आज मुझे पता चल गया है कि तुम वास्तव में भगवान की ही प्रतिमा बना रहे हो।''

प्रथम महामस्तक अभिषेक !

चामुंडराय अपने द्वारा बनवाई हुई कृति को देखकर फूला नहीं समा रहा था, उसके अन्दर मान भर गया था। रविवार 13 मार्च 981 ई. को बड़ी वैभवता से प्रतिमा का महामस्तक अभिषेक करने का मुहूर्त निकला। एक ऊँचे प्लेटफॉर्म का निर्माण किया गया, दूध, नारियल, पुष्प, सुगंधित जल तथा अन्य प्रकार की पूजा की सामग्री रखी गई। सर्व प्रथम चामुंडराय ने चार बार भगवान की मूर्ति के ऊपर दूध के भरे हुए चार मटके डाले परन्तु अभिषिक्त दूध नाभि तक पहुँच कर वहाँ रुक गया। परेशान होकर चामुंडराय ने वहाँ बैठे हुए समस्त पुजारियों तथा सारी जनता को जो अपने साथ दूध लाई थी उन सबको भगवान का दूध से अभिषेक करने को कहा, परन्तु भगवान की नाभि के स्थान से एक बूँद भी दूध नीचे नहीं उतरा।

जैन समाज में स्त्री की महानता !

एक वृद्ध महिला गुल्लिकायज्जी जिसकी कमर कमान की तरह समय के साथ झुक गई थी, वह थोड़ा सा दूध नारियल के बाहिर वाले लकड़ी के खोल में अपने साथ लेकर आई थी, वह प्रतिष्ठाचार्य

जी के समीप आई तथा बड़ी विनम्रता से वंदन कर के आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी से कहा, कि उसे अपने विश्वास तथा भक्ति से अभिषेक करने की आज्ञा दी जाये। वहाँ एकत्र जनसमूह हँस पड़ा कि घड़ों के घड़े दूध के भरे हुए प्रतिमा पर उँडेल दिये गये हैं और दूध नाभि से नीचे नहीं उतरा। इसका नारियल के खोल में लाया हुआ दूध क्या करेगा? उसी समय आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी ने चामुंडराय को कहा कि वह गुल्लिकायज्जी से विनम्र प्रार्थना करे कि वह भगवान की प्रतिमा का अभिषेक करे ! धीरे-धीरे गुल्लिकायज्जी प्लेटफॉर्म की सीढ़ियाँ चढ़ने लगीं और भगवान की भक्ति उसके मन में हिलोरें लेने लगी, ज्यों ही गुल्लिकायज्जी ने अपने पात्र में लाया हुआ सारा दूध भगवान के सिर पर उंडेला और वह दूध चरणों की ओर बढ़ा वैसे ही नाभि के ऊपर रुका हुआ सारा दूध भगवान के चरणों को छूता हुआ पूरा का पूरा विंध्यगिरी पहाड़ी के चारों ओर फैल गया, पूरी की पूरी विंध्यगिरी पहाड़ी दूध से नहा उठी। यह छोटी सी घटना बताती है कि कैसे चामुंडराय का अभिमान टूट गया तथा एक गरीब वृद्ध महिला को समाज में इतना-ऊँचा स्थान मिला। चामुंडराय जी ने गुल्लिकायज्जी की इस भक्ति को चिरस्थायी बनाने हेतु उनकी एक मूर्ति बनवा कर भगवान बाहुबली की प्रतिमा के ठीक सामने दरवाजे के बाहिर एक मन्दिर में स्थापित की, हाथ में कटोरा लेकर खड़ी गुल्लिकायज्जी के नयन आज भी श्रद्धा एवं भक्ति से भगवान बाहुबली की प्रतिमा को निहार रहे हैं।

प्रतिमा तथा महामस्तक अभिषेक

भगवान बाहुबली की यह दिगम्बर मूर्ति उत्तराभिमुखी खड्गासन, ध्यानस्थ संपूर्ण विश्व में सबसे विशाल 57 फीट ऊँची है, सिर पर केशों के छोटे-छोटे कुन्डलु, बड़े तथा लम्बे कान, एक कान से दूसरे कान की दूरी 9 फीट, चौड़ा वक्ष-स्थल, नीचे लटकती हुई विशाल भुजाएँ, हाथ की सबसे छोटी उँगली की लम्बाई साढ़े तीन फीट, चरणों की लम्बाई 8 फीट 3 इंच, अंग-अंग का ऐसा निखार अन्यत्र कहीं और नहीं। 300 फीट ऊँची पहाड़ी पर करीब 600 सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद प्रतिमा के सम्मुख पहुँच सकते हैं। यह मूर्ति त्याग, तपस्या और शांति की अमर प्रतीक, वर्षों से सबको अपनी ओर आकर्षित कर रही है।

1000 वर्ष पूरे होने पर इसका महामस्तकाभिषेक 20 जनवरी 1981 को प्रमुख जैन आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज के सान्निध्य में किया गया था।

गोम्मटेश्वर पर डाक टिकट

भगवान बाहुबली को विनयांजलि देने के लिए भारत सरकार के डाक विभाग ने 9 फरवरी 1981 को महामस्तक अभिषेक के 1000 वर्ष पूरे होने पर एक बहुरंगी डाक टिकट जिसका मूल्य एक रुपया है तथा जिस पर मूर्ति का ऊपरी भाग दर्शाया गया है, जारी की थी।

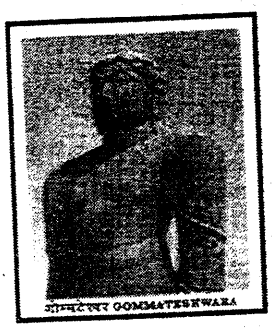

इस डाक टिकट को इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस से छपवा कर 18 लाख 70 हजार संख्या में जारी किया गया था। इंगलैण्ड से छपने वाले स्टेनले गिब्णस केटालाग में इसका विवरण एस.जी. नं. 846 पर दिया गया है। ♦♦

डाक टिकटों पर जैन इतिहास-11

सुप्रसिद्ध जैन समाज सुधारक डा. कर्मवीर भाऊराम पाटिल

-सुरेश जैन लुधियाना

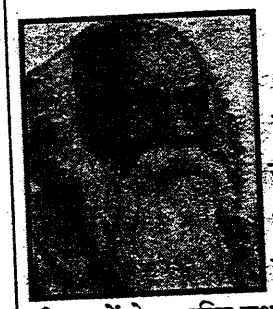

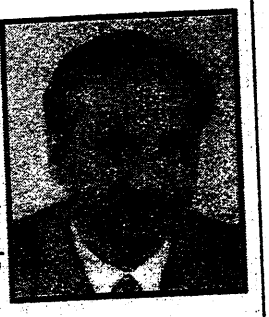

वरना नदी के किनारे बसे हुए एक गांव कम्भोज जिला कोल्हापुर महाराष्ट्र में 22 सितंबर 1887 को एक प्रतिष्ठत जैन परिवार में डा. कर्मवीर भाऊराव पाटिल का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम श्री पैगौंडा पाटिल तथा माता का नाम श्रीमती गंगु बाई था। उनके माता-पिता ने बाल्यकाल से ही उनमें देश भक्ति तथा समाज सेवा की भावना कूट-कूट कर भरी थी। प्रारंभिक शिक्षा गांव में लेने के बाद उनको आगे पढ़ने के लिए जैन स्टूडेंट होस्टल, कोल्हापुर में भेज दिया गया, जहां उन्होंने सातवीं कक्षा तक शिक्षा उत्तीर्ण की। कहा जाता है कि उन दिनों इस बात की बहुत चर्चा हुई थी कि यह प्रदेश का पहला जैन विद्यार्थी है जिसने सातवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की है।

भाऊराव पाटिल जैन परिवार में जन्म लेने तथा जैन धर्म का अनुयायी होने पर भी धर्म, जाति, अथवा वंश की मान्यताओं से ऊपर रहे। भगवान महावीर के अनुयायी के रूप में वह कहते थे-अहिंसा मनुष्य के मन में, वाणी में तथा कर्म में होनी चाहिए। वह यह महसूस करते थे कि विचारों में तथा उन की अभिव्यक्ति में अहिंसा के आग्रह से धार्मिक सहिष्णुता पैदा हो सकती है। भगवान महावीर की शिक्षा के अनुरूप बचपन से संस्कार तो थे, ही ऊपर से छुआ-छूत के खिलाफ साहू महाराज ने उन दिनों आंदोलन छेड़ा हुआ था, जिसका भाऊराव पाटिल के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन दलितों तथा शोषितों के कल्याण तथा उत्थान में लगा दिया। वह सदैव अस्पृश्यता के उन्मूलन पर ज़ोर देते रहे तथा समानता की वकालत करते रहे। एक बार गांधी जी का मुंबई में भाषण सुनने के बाद उनके विचारों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सारी जिंदगी खादी पहनने तथा सादगी भरा जीवन गुजारने का नियम ले लिया तथा इसके बाद सिर पर टोपी तथा पांव में जूता पहनना भी छोड़ दिया।

बड़े होने पर वह एक दूर द्रष्टा सिद्ध हुए, उन्होंने महसूस किया कि भारत की प्रगति यहां के ग्रामों की प्रगति पर निर्भर करती है, तथा यह सामूहिक शिक्षा से ही लाई जा सकती है। अतः उन्होंने अपना जीवन ग्रामीण जनता को शिक्षित करने में समर्पित कर दिया। अपने इस प्रयास में उन्हें अत्याधिक सफलता मिली। प्रारंभ में भाऊराव पाटिल ने अपना कोई विद्यालय नहीं चलाया, उन्होंने उन केन्द्रों में छात्रावासों से अपने कार्य की शुरूआत की जहां ग्रामीण क्षेत्र के निर्धन और योग्य छात्र रहकर उनके मार्गदर्शन में कार्य कर सकें व शिक्षा ग्रहण कर सकें।

सन् 1919, 4 अक्तूबर को उन्होंने गांव काले में रैयत शिक्षण संस्थान स्थापित किया जिसका उद्देश्य समाज के उस पिछड़े वर्ग को शिक्षित करना था जो सदियों से शिक्षा से वंचित था। यह संस्थान उनके महान कार्य और मिशन का जीवंत स्मारक है। पांच छात्रों से प्रारंभ की गई उनकी रैयत शिक्षा संस्था, शिक्षा का ऐसा प्रभावशाली और लोकप्रिय माध्यम बन गई जिसने न केवल ग्रामीण जनता में शिक्षा का प्रसार करने में

सहायता दी अपितु एक जनतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली स्थापित करने के लिए अनुकूल परिस्थितियां भी पैदा की। उनकी संस्था ने अपने छात्रों से श्रम की गरिमा, आत्मविश्वास और मिलजुल कर रहने की भावना पैदा की।

भाऊराव पाटिल जातपात तथा धर्म के आधार पर विद्यार्थियों को होस्टलों में रखने के सख्त खिलाफ थे। उन्होंने सितारा (महाराष्ट्र) में एक बड़े होस्टल का निर्माण करवाया तथा उसे चलाने के लिए उन्हें अपनी धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मीबाई के गहने बेचने पड़े। उन्होंने इस होस्टल में सबसे पहले एक महर जाति के लड़के गणदेव ध्रवनाथ घोलप को दाखिल किया। भले ही उच्च जाति के लोगों ने इसका कड़ा विरोध किया, परंतु भाऊराव अपने फैसले पर अडिग रहे, वह अपने दृढ़ निश्चय के लिए प्रसिद्ध थे। यही महर जाति का बालक पढ़ लिखकर बम्बई विधान सभा का सदस्य बना, वह उन कुछेक हरिजनों में से एक था जिन्हें यह प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

भाऊराव पाटिल समझते थे कि सामाजिक जीवन के पुराने पड़ गए मूल्यों और मान्यताओं में परिवर्तन की अत्याधिक आवश्यकता है, इस कारण उन्होंने विद्यालय खोलने के सात मुख्य उद्देश्य सामने रखे।

1. पिछड़ी जाति के बच्चों में विद्या के प्रति रूचि पैदा करना।
2. पिछड़ी जाति के विद्यार्थियों को नि:शुल्क शिक्षा देना।
3. हर जाति तथा धर्म के विद्यार्थियों में प्यार के संबंध बनाना।
4. किसी के भी दबाने के कार्य को रोकना तथा समूचे समाज को ऊपर उठाना।
5. पूरी शक्ति के साथ इकट्ठे मिल कर काम करना।
6. विद्यार्थियों को अच्छे व्यवहार वाला, निर्भय तथा देश भक्त बनाना।
7. जगह-जगह स्कूल, कालेज खोलने तथा सबको शिक्षित करना।

यद्यपि भाऊराव शास्त्रीय अर्थ में शिक्षाविद् नहीं थे तथापि शिक्षा के बारे में उनका सिद्धांत उनके अपने व्यावहारिक अनुभव पर आधारित था। वह इतना ही जानते थे कि उनके इर्द-गिर्द जितने भी लोग रह रहे हैं, उन्हें शिक्षा दिए जाने की जरूरत है। उन्होंने समूचे दक्षिणी महाराष्ट्र में प्राथमिक और माध्यात्मिक विद्यालयों, प्रशिक्षण कालेजों और आर्टकालेजों का एक विस्तृत जाल सा बिछा दिया। उनके छात्र देश के उत्तम नागरिक बन कर विद्यार्थियों से निकले।

उन्होंने अपने जीवन में 38 पक्षपात रहित बोर्डिंग स्कूल, 578 स्वयं सेवी स्कूल, 6 ट्रेनिंग कालेज, 108 सैकेन्डरी स्कूल तथा 3 कालेज स्थापित करवाएं।

सम्मान-

1. महाराष्ट्र के लोगों ने उनको सारी जिंदगी लग्न के कार्य करने के लिए कर्मवीर की उपाधि से सम्मानित किया।

2. शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाओं के लिए पूना विश्वविद्यालय ने उनको डी. की मानद लिट उपाधि से 1959 में सम्मानित किया। इस मौके पर उन्होंने कहा कि यह उनकी जिंदगी का सबसे बड़ा सम्मान है।

3. सुविख्यात सामाजिक कार्यकर्त्ता और जनसेवी डा. कर्मवीर भाऊराव पाटिल को उनकी उत्कृष्ट सामाजिक सेवाओं के लिए भारत सरकार ने 1959 में पद्म भूषण से सम्मानित किया।

जैन परिवार में जन्म लेकर अछूतों का उद्धार करने में सबसे अधिक योगदान देने वाले, सेवा तथा शिक्षा को पूरी जिंदगी समर्पित करने वाले डा. कर्मवीर भाऊराव पाटिल का 9 मई 1959 को 72 वर्ष की आयु में देहांत हो गया।

दक्षिण भारत जैन समाज ने उनकी याद को चिरस्थायी बनाने के लिए एक पुरस्कार शुरू किया है जिसका नाम 'डा. कर्मवीर भाऊराव पाटिल समाज सेवा पुरस्कार' रखा गया। यह पुरस्कार शिक्षा के क्षेत्र में तथा समाज सेवा के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान देने वालों को हर वर्ष दिया जाता है।

डा. कर्मवीर भाऊराव पाटिल पर डाक टिकट : 19वीं शताब्दी में पैदा हुए जैन श्रावक जिन्होंने व्यवहारिक तौर पर छूआ-छूत को समाप्त करने के लिए कार्य किया, समाज में समानता से शिक्षा को उपलब्ध करवाया। उस महान समाज सुधारक के सम्मान स्वरूप भॉरत सरकार के डाक विभाग ने उनके चित्र वाली एक रंग की डाक टिकट 9-5-1988 को जारी की थी, जिसका मूल्य 60 पैसे है। डाक टिकट के बाई ओर डा. कर्मवीर भाऊराव पाटिल का चित्र है तथा दायीं ओर एक शिक्षक पांच विद्यार्थियों को पढ़ा रहा है, जो इनकी रैयत शिक्षा संस्था के प्रारंभ करने का दृश्य दर्शाती है। यह डाक टिकट भारत प्रतिभूति मुद्रणालय से फोटो ग्रव्योर मुद्रण प्रक्रिया द्वारा छपवा कर 10 लाख की संख्या में जारी की गई थी। इसका विवरण लंदन इंग्लैंड से छपने वाले सटेनले गिब्नस केंटालाग में **S.G** नंबर 1143 पर दिया गया है।

डाक टिकटों पर जैन इतिहास-12

जैन मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज

-सुरेश जैन

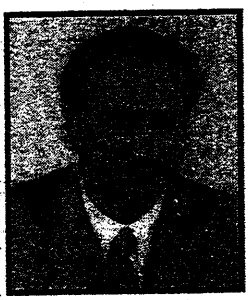

पूज्य श्री मिश्रीमल जी महाराज का जन्म 18 अगस्त, 1891 को पाली, राजस्थान में हुआ था। इनके पिता श्री शेषमल सोलंकी भाद्राजुन रियासत में एक ऊंचे ओहदे पर कार्यरत थे। इनकी माता का नाम श्रीमती केसर कुंवर जी था, जो बड़ी स्नेहशील तथा धर्मपरायण महिला थीं। बाल्याकाल में ही माता का साया इनके सिर से उठ गया। केसर कुंवर जी के असामयिक निधन के पश्चात् भाद्राजुन रियासत की राजमाता श्रीमती देवड़ी जी ने उनका लालन-पालन किया।

बचपन से ही मिश्रीमल जी ने सादा जीवन जिया। इनकी सोच बड़ी ऊंची थी। इसके साथ-साथ गहरा अध्ययन, समन्वयात्मक प्रकृति, दीर्घद्रष्टा, धीरता, वीरता, गंभीरता आदि दैदीप्यमान गुणों की स्पष्ट झलक भी इनमें दिखाई देती थी। मात्र 27 वर्ष की अवस्था में 13 मई 1918 को इन्होंने सोजत राजस्थान में जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी भिक्षु परम्परा में श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा लेते ही आपने गहन अध्ययन शुरू किया। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू तथा राजस्थानी भाषा व साहित्य के प्रकांड पंडित मर्मज्ञ विद्वान बन गए व साथ ही आगमों के ज्ञाता बन गए। आपने आगमों का वैज्ञानिक अध्ययन तथा अन्य धर्मों के ग्रंथों का गहन स्वाध्याय किया। संयमी-ज्ञानी-ध्यानी व्यक्तित्व के गुणों का अभिनन्दन, तीव्र बुद्धि तथा लगन के कारण आप हर बात को शीघ्रता से कंठस्थ कर लेते थे।

आप एक महान संत, प्रकांड विचारक तथा ओजस्वी उपदेशक बने। आपके जीवन में निस्पृहता तथा वाणी में चमत्कार था। जो बात आप कहते थे वह अनूठी होती थी। जब आप प्रवचन करते थे तो आप की वाणी सिंह गर्जना करती थी और सीधी हृदय में उतर जाती थी। न किसी का पक्ष लेते थे और न ही किसी का डर था। सत्य बात को बहुत ही स्पष्टता से कहते थे ताकि श्रोताओं के कानों की खिड़कियां खुलें और वे हितकारी सत्य को स्वीकार करने के लिए स्वत: विवश हो जाएं।

मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज ने लगभग 180 दार्शनिक-साहित्यक रचनाओं के माध्यम से जैन धर्म के प्रभावशाली तथा शाश्वत संदेशों का प्रचार-प्रसार किया। आपने सामाजिक सेवा तथा जन कल्याण के महत्व पर भी बल दिया। सम्पूर्ण देश में विभिन्न जातियों के लाखों व्यक्ति आप के अनुयायी बने। आप आशु कवि व ओजस्वी वक्ता थे। आपने पांच हजार पृष्ठों से भी अधिक गद्य-पद्य की रचना की। इनमें उनके दो महाकाव्य 'राम यशोरसायन' (रामकथा पर आधारित) तथा 'पांडव यशोरसायन' (महाभारत पर आधारित) भी शामिल है। उनकी अधिकांश रचनाएं 'मरूधर केसरी ग्रंथावली' दो खण्डों में संगृहित हैं।

22 अक्तूबर 1936 को देश के सभी अंचलों से आए हुए आप के हजारों अनुयायी टांटोटी ग्राम (राजस्थान) में एकत्रित हुए और आप को 'मरूधर केसरी' की उपाधि से सुशोभित किया। 30 अप्रैल

1938 को 'प्रवर्त्तक' की उपाधि से सम्मानित किया गया। 16 अगस्त 1970 को 'श्रमण सूर्य' की उपाधि से पुनः सम्मानित किया गया।

श्रमण सूर्य, मरूधर केसरी, प्रवर्त्तक मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज ने 17 जनवरी 1984 को 93 वर्ष की आयु में जैतारण (राजस्थान) में महाप्रयाण किया। इनकी समाधि 'मरूधर केसरी पावनधाम' जैतारण (राजस्थान) एक तीर्थस्थल बन गई है। इनके वर्चस्व, प्रभाव, चिंतन-मनन, लेखन की मनमोहनी प्रतिमा से आज भी सभी चिरपरिचित हैं। देश-विदेश से हजारों श्रद्धालु जैन मुनि मिश्रीमल जी महाराज को श्रद्धांजलि अर्पित करने यहां आते हैं तथा उनके विचारों को आत्मसात करने का संकल्प लेते हैं।

जैन मुनि मिश्रीमल जी पर डाक टिकट : वह 20वीं सदी के प्रथम जैन संत थे, जिनके चित्र वाला एक डाक टिकट भारत सरकार के डाक विभाग ने 28 अगस्त 1991 को उनके जन्म शताब्दी वर्ष पर जारी किया था। डाक टिकट का मूल्य 100 पैसे है तथा यह एक रंगी डाक टिकट फोटोग्रव्योर मुद्रण प्रक्रिया से छह लाख संख्या में जारी की गई थी। डाक टिकट के बाईं ओर जैन मुनि मिश्रीमल जी का चित्र है तथा दाईं ओर इनकी जैतारण (राजस्थान) में बनी हुई समाधि 'मरूधर केसरी पावनधाम' का चित्र अंकित है। इस डाक टिकट का विवरण न्यूयार्क अमेरिका में छपने वाले **Scott Catalouge** में नं. 1371 पर तथा लंदन-इगलैंड से छपने वाले **Stanley Gibbons Catalouge** में **S.G. No. 1294** पर दिया गया है।

डाक टिकटों पर
जैन इतिहास
क्रमांक-13

बड़ौदा संग्रहालय में भगवान् ऋषभ नाथ

❋
सुरेश जैन
❋

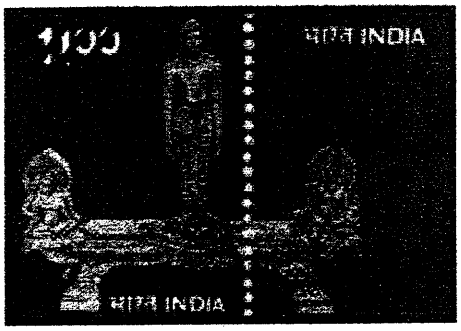

Statue of Rishabhnath in Baroda Museum along with Yaksh and Yakshni

भगवान् ऋषभनाथ का जन्म चैत्र कृष्ण अष्टमी की अर्धरात्रि को अयोध्या में पिता महाराज नाभिराय की धर्मपत्नी महारानी मरुदेवी की कोख से हुआ। इनका निर्वाण-माघ कृष्ण चौदस को श्री कैलाश पर्वत पर हुआ था।

गर्भ में आने पर हिरण्य (सुवर्ण रत्नों) की वर्षा होने से ''हिरण्यगर्भ,'' दाहिनी जंघा पर बैल का चिह्न होने से ''ऋषभ'', धर्म के नियम लागू करने से ''वृषभ'', शरीर की अधिक ऊँचाई होने से ''ब्रहदेव एवं पुरुदेव'', धरती पर सबसे पहले देव होने से ''आदिनाथ'' और सबसे पहले मोक्षमार्ग का उपदेश करने से ''आदिब्रह्मा'' कहा गया। इनके पिता का नाम नाभिराय होने से इन्हें ''नाभिसूनु'' भी कहा गया है।

इन्होंने प्रजा को आजीविका के लिए कृषि (खेती), मसि (लिखना, पढ़ना, शिक्षण) असि (रक्षा हेतु तलवार, लाठी आदि चलाना) शिल्प-वाणिज्य (विभिन्न प्रकार के उद्योग तथा व्यापार करना) और सेवा-इन षट्कर्मों (जीवनवृत्तियों) के करने की शिक्षा दी थी इसलिए इन्हें ''प्रजापति'' कहा जाता है। इन्होंने पुरुषों को बेहतर जीवन जीने के लिए 72 कलाएँ तथा स्त्रियों को 64 कलाएँ सिखाईं।

वैदिक धर्म में भी ऋषभदेव को एक अवतार के रूप में माना गया है। भागवत में अर्हन् राजा के रूप में इनका विस्तृत वर्णन है। इसमें भरत आदि 100 पुत्रों का कथन जैन धर्म की तरह किया गया है।

ऋग्वेद आदि प्राचीन वैदिक साहित्य में भी इनका आदर के साथ वर्णन किया गया है। हिन्दु पुराण श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध के अनुसार मनु के पुत्र प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र हुए जिनके पुत्र राजा नाभि थे (जैन धर्म में नाभिराय नाम से उल्लिखित) राजा नाभि के पुत्र ऋषभदेव हुए जो महान् सम्राट् हुए। भागवत पुराण में ऋषभदेव को जैन धर्म की परम्परा का संस्थापक बताया गया है। यानी मनु की पाँचवीं पीढ़ी में एक राजा ने अपना राज्य कुशलता पूर्वक चलाया था और उसने कर्मण्यता व ज्ञान का प्रसार भी किया

था। वह स्वयं में एक महान् दार्शनिक था। उसने अपने जीवन के आचरण से सिद्ध किया था कि दुनिया में रहते हुए भी दुनिया से हटकर जिया जा सकता है। ऐसे महामानव को जैन परम्परा में प्रथम तीर्थंकर माना गया है। भरत इनके ज्येष्ठ पुत्र थे। वे एक प्रतापी सम्राट् हुए जिनके नाम पर हमारे राष्ट्र का नाम भारत पड़ा। विष्णु पुराण के अनुसार भी इनके पुत्र भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। इससे पूर्व इस भारतवर्ष का नाम अजनाभ वर्ष प्रसिद्ध था।

भारतवर्ष में पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक हर प्रांत में भगवान् ऋषभनाथ की मूर्तियाँ मिलेंगी। यहाँ तक कि ब्रिटिश शासन काल में इनकी बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ विदेशों के संग्रहालयों में भी पहुँच चुकी हैं। जैन परम्परा में सभी तीर्थंकरों में से सिर्फ भगवान् ऋषभनाथ के ही सिर के बाल लम्बे होने के कारण इन्हें केशी कहा गया है। इनके कन्धों से नीचे तक की केशों वाली दो हजार वर्ष प्राचीन कुषाणकालीन दिगम्बर प्रतिमा मिली है। भगवान् ऋषभदेव जी की विश्व में सबसे बड़ी प्रतिमा बड़वानी (मध्य प्रदेश) के पास बावनगजा में है। यह 84 फीट ऊँची प्रतिमा है। बड़ौदा संग्रहालय में प्रथम जैन तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभनाथ की एक विशिष्ट कांस्य-प्रतिमा है जो कि दिगम्बर अवस्था में एक सिंहासन पर खड़ी है तथा सिंहासन के एक छोर पर यक्ष (गोमुख) की प्रतिमा है तथा दूसरे छोर पर यक्षिणी (चक्रेश्वरी) की प्रतिमा है। यह प्रतिमा छठी शताब्दी की है तथा इस संग्रहालय का गौरव है। यह संग्रहालय देश के सर्वोत्कृष्ट संग्रहालयों में से एक है जिसे बड़ौदा के महाराजा विश्व-विरासत के रूप में यह सम्पदा लोगों के लिए संजोये रखने वास्ते छोड़ गए हैं। इसी बड़ौदा संग्रहालय की शताब्दी 1994 ई. में मनाईयी गयी थी तथा संग्रहालय में रखी हुई ऋषभनाथ की कांस्य की प्रतिमा के साथ यक्ष व यक्षिणी की प्रतिमाओं के चित्र वाली एक डाक टिकट शताब्दी वर्ष के उपलक्ष जारी की गई थी।

डाक टिकट का डिज़ाइन

डाक टिकट को दो भागों में बाँटकर इसे SE-TENANT-PAIR(जुड़वाँ डाक टिकट के रूप में) छापा गया है। एक भाग का मूल्य 1100 पैसे है जिसके ऊपर ऋषभनाथ की खड़ी प्रतिमा तथा सिंहासन के एक छोर पर यक्ष की प्रतिमा है तथा दूसरे भाग का मूल्य 600 पैसे है तथा उस पर यक्षिणी का चित्र सिंहासन के दूसरे किनारे वाला दिया गया है। यह डाक टिकट 20-12-94 को जारी किया गया था। इस दो रंगी डाक टिकट को 10 लाख संख्या में जारी किया गया था। इसका वर्णन लण्डन इंग्लैण्ड से छपने वाले सटेनले गिब्स केटलॉग में एस.जी. नं. 1434, 1435, 1435 ए, 1436 पर दिया गया है।

♦♦

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-14

डा. जगदीश चन्द्र जैन

-सुरेश जैन, लुधियाना

उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव बसेड़ा जिला मुजफ्फरनगर में डा. जगदीश चन्द्र जैन का जन्म 20 जनवरी 1909 ईस्वी में हुआ था। इनके पिता श्री कांजीमल जैन की गांव में छोटी-सी युनानी दवाइयों की दुकान थी। सन् 1911 में इनके पिता कांजीमल जैन का प्लेग के रोग से देहावसान हो गया तथा परिवार को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परिवार बेहद निर्धन था। जगदीश चन्द्र जैन ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गांव की पाठशाला से प्राप्त की। वह पढ़ने-लिखने में बेहद योग्य विद्यार्थी थे। 9 वर्ष की आयु में इन्होंने पाठशाला की पढ़ाई समाप्त की। इसके बाद इनके बड़े भाई ने आगे पढ़ने के लिए इनको गुरुकुल में भेज दिया। जहां उन्होंने शिक्षा ग्रहण करने, साथ-साथ सख्त अनुशासन को सीखा, जिसने उनके आने वाले जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला।

सन् 1923 में जगदीश चन्द्र जैन ने अपने बलबूते पर स्याद्वाद जैन महाविद्यालय, वाराणसी में दाखिला लिया। जहां उन्होंने संस्कृत, जैन धर्म, व्याकरण, साहित्य तथा न्याय को पढ़ा तथा उन्होंने शास्त्री की डिग्री भी प्राप्त की। उन्होंने अपनी पढ़ाई को जारी रखा तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने बी.ए. की डिग्री प्राप्त की तथा बाद में एम.ए. फिलासफी की डिग्री प्राप्त की। जगदीश चन्द्र जैन का कालेज का जीवन कोई आसान जीवन नहीं था, उन्हें हर रोज अपने खाने के लिए संघर्ष करके कुछ न कुछ कमाना पड़ता था।

सन् 1929 में इनकी शादी कमलश्री से हो गई, जो एक उच्च धनाढ्य तथा समृद्ध परिवार से आई थी, परन्तु उन्होंने जल्द ही अपने ऐशो-आराम की जिन्दगी को त्याग दिया तथा श्री जगदीश चन्द्र जैन के परिवार में अपने जीवन को ढाल लिया।

महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए अहिंसा पूर्वक सत्याग्रह का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा तथा 1930 में वह सत्याग्रह आंदोलन में कूद पड़े और सत्याग्रहियों की प्रथम श्रेणी में उनका नाम शुमार हो गया। उन्होंने अजमेर में एक स्कूल में अध्यापक के रूप में अपना केरियर शुरू किया, जब मुख्याध्यापक ने उनके गांधी टोपी पहनने पर आपत्ति की, तब जगदीश चन्द्र जैन ने नौकरी छोड़ देना बेहतर समझा।

समय बीतता गया। कुछ वर्षों के बाद उनको शोध छात्र के रूप में शांति निकेतन स्थित विश्वभारती-विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति मिली। यहां पर गुरुदेव रबीन्द्र नाथ टैगोर के सान्निध्य में उनका बौद्धिक विकास हुआ तथा भारत की विरासत की महानता की अनुभूति हुई। बाद में डा. जैन ने राम नारायण रूइया कालेज, मुम्बई में 30 वर्षों से भी अधिक समय तक हिन्दी, संस्कृत तथा प्राकृत के प्रोफैसर के रूप में कार्य किया। यहीं पर उन्होंने समाज शास्त्र में पीएच.डी. की।

1942 में डा. जगदीश चन्द्र जैन ने फिर भारत की आजादी के लिए सत्याग्रह में भाग लिया तथा उन्हें सितम्बर 1942 में वरली जेल में डाल दिया गया। सन् 1970 में डा. जैन ने कील जर्मनी में भारतीय विद्या विभाग के आमंत्रित अतिथि प्रोफैसर के रूप में 4 वर्षों तक कार्य किया। सन् 1980 में वह भारतीय दर्शन पर व्याख्यान देने ब्राजील गए। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'जैनइज्म' (जैन धर्म) का पुर्तगाली भाषा में अनुवाद किया गया। उच्चकोटि की जैन विचारधारा, प्राकृत भाषा तथा साहित्य के महान जानकार विश्वविख्यात विशेषज्ञ डा. जगदीश चन्द्र जैन ने प्राकृत भाषा और साहित्य को न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी प्रचारित और प्रसारित किया। वह एक प्रसिद्ध इतिहासकार और आगमवेत्ता थे। वह जाने-माने **Indologist**, पुरातत्व विभाग विशेषज्ञ, खोजकर्त्ता, शिक्षाशास्त्री, लेखक तथा स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने भारत की आज़ादी की लड़ाई के दौरान जैन फिलासफी, प्राकृत साहित्य तथा हिन्दी भाषा की 80 से अधिक पुस्तकें लिखीं। वह बिहार के प्राकृत जैन इंस्टीट्यूट में शोध निदेशक रहे। उन्होंने पेचिंग चीन में भी अध्यापन कार्य किया।

उन्होंने सरकार को बार-बार गांधी जी के मारे जाने के बारे में चेतावनी दी थी, लेकिन उनकी एक न सुनी गई। वह गांधी जी की हत्या के सिलसिले में सन् 1948 में लाल किला दिल्ली में चले मुकदमे में मुख्य गवाह थे। बाद में उन्होंने अपनी यादों को दो पुस्तकों में लिखा, जिनके नाम हैं- **I could not save Bapu** तथा **The Forgotten Mahatma.** इन्हें ज्ञान भारती पुरस्कार के अलावा अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार देश तथा विदेशों में मिले। 28 जुलाई 1993 को 85 वर्ष की आयु में उनको दिल का दौरा पड़ा, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। बाम्बे म्युनिसिपल कार्पोरेशन ने बाम्बे की जिस गली में डा. जगदीश चन्द्र रहते थे, उसका नाम उनके नाम पर रख कर उनको श्रद्धांजलि दी थी। इनकी याद में प्रो. जे.सी. जैन स्मारक ट्रस्ट क मेटी बनी हुई है, जो इनके कार्यों, विचारों तथा साहित्य को आगे बढ़ा रही है।

डाक टिकट तथा डाक टिकट का डिजाइन : जैन जगत के महान सपूत डा. जगदीश चन्द्र जैन के चित्र वाला एक स्मारक डाक टिकट भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा 28 जनवरी 1998 को जारी किया गया। भूरे रंग के 200 पैसे वाले इस डाक टिकट में बाईं ओर डा. जगदीश चन्द्र जैन का चित्र और दाईं ओर संभवत: सिन्धु सभ्यता से प्राप्त दो सीलों जो कि जैन धर्म से संबंधित जान पड़ती हैं, के चित्र अंकित हैं। इस टिकट को फोटोग्रव्योर मुद्रण प्रक्रिया से 4 लाख संख्या में जारी किया गया था। इसका विवरण लंदन (इगलैंड) में छपने वाले स्टेनले गिब्बंस कैटालॉग में नं. **SG-1606** पर तथा अमेरिका में छपने वाले सकाट कैटालॉग में नं. 1677 0पर दिया गया है।

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-15

आचार्य तुलसी

-सुरेश जैन, लुधियाना

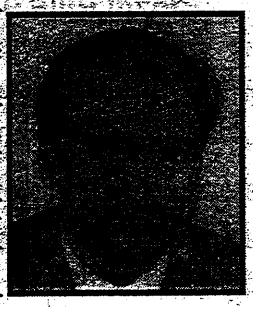

आचार्य तुलसी का जन्म 20 अक्तूबर 1914 को राजस्थान के नागौर जिले के एक छोटे से शहर लाडनूं में आपश्री एक जैन परिवार में हुआ था। बचपन में ही उनके पिता चल बसे तथा उनका लालन-पालन उनकी माता ने किया, छोटी-सी उम्र से ही वह अपने जीवन के लक्ष्य के प्रति जागरूक थे और केवल ग्यारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। 22 वर्ष की अवस्था में उन्हें उनके गुरु जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी द्वारा इस धर्म संघ का आचार्य (परम धर्माध्यक्ष) नियुक्त किया गया।

आपश्री प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी सहित अनेक भाषाओं के प्रकांड विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी राजस्थानी भाषा में 50 से अधिक ग्रंथों की रचना की थी। 2 मार्च 1949 को जीवन के मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया तथा 'संयम ही जीवन है' के घोष के साथ जन-जन में जाति धर्म, सम्प्रदाय आदि के भेदभाव के बिना अणुव्रत (संयम के छोटे-छोटे संकल्पों) का प्रचार किया। वह दार्शनिक, लेखक, कवि, गायक, वक्ता, आध्यात्मिक, संत, महान समाज-सुधारक तथा महिला उत्थान के पक्षधर थे। इसके लिए उन्होंने कई पग उठाए जिन में मुख्य महिलाओं की पर्दा प्रथा, विधवा होने पर काले कपड़े पहनने, दहेज प्रथा तथा मृत्यु भोज के खिलाफ समाज को जागरूक किया। अणुव्रत आन्दोलन जनकल्याण के लिए संसार के सामने रखा, जिसमें शिक्षा, शोध, साहित्य, सेवा, साधना, संस्कृति एवं समन्वय पर जोर दिया।

सन् 1955 में उन्होंने आगम (जैन धर्म वैधानिक साहित्य) अनुसंधान का एक भागीरथ कार्य प्रारंभ किया तथा बाद में सभी 32 आगमों का समीक्षात्मक संस्करण प्रकाशित कराया। जैन इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना है। आगम संपादन कार्य शुरू करने पर उन्होंने अपने सहयोगी संतों को कहा- देखो, एक बात का ध्यान रखना, हम आगम का संपादन कर रहे हैं। आगम पूरे जैन समाज के मान्य ग्रंथ हैं। केवल तेरापंथ का उन पर अधिकार नहीं है। इसलिए हमारे ऊपर बहुत बड़ा दायित्व है, हमने यह गुरुतर कार्य हाथ में लिया है। इस बात का ध्यान रहे कि अनुवाद करते समय टिप्पणी लिखते समय, टीका लिखते समय जो आगम में है, वही आए। उसमें तेरापंथ की मान्यता को शामिल नहीं करना है। कहीं पर मतभेद हो तो फुट नोट में दिया जा सकता है। किन्तु मूल पाठ में हम अपनी मान्यता को जबरदस्ती शामिल न करें। यह संपादन का काम बिल्कुल असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण से करना है।

आचार्य तुलसी ने अपने गुरुत्व की व्याख्या स्वयं की है उन्होंने कहा-धर्म संघ का संचालन करने वाले व्यक्ति में तीन गुणों का विकास होना चाहिए।

पहली बात : समता का विकास

दूसरी बात : क्षमता यानी सहन करने की शक्ति का विकास

तीसरी बात : ममता ! उसमें ममता होनी चाहिए, सब मेरे अपने हैं, कोई पराया नहीं।

आचार्य तुलसी कहा करते थे 'मुझे और कुछ नहीं चाहिए, मुझे एक मात्र सत्य से मतलब है। महावीर वाणी को मैं सत्य और संयम का आधार मानता हूं' समर्पण न किसी व्यक्ति के प्रति, न संस्था के प्रति, न किसी अन्य वस्तु के प्रति, केवल सत्य के प्रति समर्पण होना चाहिए। बहुत कठिन बात है सत्य के प्रति समर्पित होना, आज गुरूता खंडित हुई है, इसका कारण है बहुत सारे गुरू कहलाने वाले लोग सम्प्रदाय के प्रति समर्पित हो गए। सत्य के प्रति उनका समर्पण नहीं रहा।

आचार्य तुलसी का स्वभाव अत्यंत विनम्र था, सरलता, शुचिता, मृदुता की त्रिवेणी थे। आप की संयम साधना उच्चकोटि की थी, आप में प्रवचन करने की अद्‌भुत कला थी। वीतराग प्रभु महावीर के शासन को धर्म ध्यान, तप, त्याग, स्वाध्याय द्वारा सींचते हुए अपनी विशिष्ट शैली से प्राणी मात्र के कार्य व धर्म का महत्व समझाते थे। 1971 में लाडनूं में उनके मार्गदर्शन में प्राच्य विद्याओं की शिक्षा, शोध, साधना आदि के लिए एक संस्था 'जैन विश्वभारती' की स्थापना की गई जिसे भारत सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग **(UNIVERSITY GRANTS COMMISION)** ने 1991 में 'मान्य विश्वविद्यालय' **(DEEMED UNIVERSITY)** का दर्जा दिया तथा आचार्य तुलसी को प्रथम अनुशास्ता **(FIRST DISCIPLINARIAN)** के रूप में मान्यता प्रदान की।

पुरस्कार एवं सम्मान : सन् 1962 में आचार्य पद प्राप्त करने की रजत जयंती के अवसर पर भारत के उपराष्ट्रपति डा. सर्वपल्ली राधा कृष्णन् ने गंगाशहर (बीकानेर) में 'आचार्य तुलसी अभिनन्दन ग्रंथ' भेंट कर उन्हें सम्मानित किया।

सन् 1972 में जैन संघ ने इन्हें 'युगप्रधान आचार्य' की उपाधि प्रदान की और इसे भारत के राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरी द्वारा प्रदान किया गया।

सन् 1974 में उनके 60वें जन्मदिवस के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति फाखरूद्‌दीन अली अहमद ने उन्हें दिल्ली में 'षष्टिपूर्ति' ग्रंथ भेंट कर सम्मानित किया।

सन् 1985 में राजस्थान विद्यापीठ (मान्य विश्वविद्यालय) द्वारा प्रदत्य सर्वोच्च उपाधि 'भारत ज्योति' भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा उदयपुर में प्रदान की गई।

सन् 1992 में तिब्बती बौद्ध शोध संस्थान, सारनाथ की ओर से दलाई लामा ने उन्हें वाक्‌पति (डी

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-16

भगवान पार्श्वनाथ तथा खुजराहो मन्दिर

-सुरेश जैन, लुधियाना

सिद्धों के सैन्य में दिवाकर के समान आचार्य कुमुदचन्द्र स्वामी फरमाते हैं कि- **'नामाऽपि पातिभवतो भवतो जगन्ति'** पार्श्व प्रभु का नाम ही हमें पवित्र करने में समर्थ है, उनके स्तवन का तो क्या कथन करूं?

भगवान पार्श्व के चिन्ह रूप में सर्प का संकेत है। प्रमुख तीर्थङ्कर पार्श्व प्रभु विषय-वासना का हरण करने में सर्वाधिक समर्थ हैं। ज्यों-ज्यों पार्श्व प्रभु के नाम की नागदमनी विष का हरण करती है, त्यों-त्यों विषयों का रस कड़वा लगने लगता है।

आचार्य प्रवर भद्रबाहु स्वामी फरमाते हैं :-

विषहर-विष-निन्नासं मङ्गल कल्याण आवासं।

विषय रूपी सर्प का विष दूर कर के मङ्गल और कल्याण के धाम में पहुंचा देने वाले पार्श्व प्रभु के सुमन का परिमल कुछ खास विशेषता रखता है। चौबीस तीर्थङ्कर रूपी पुष्पोधान का प्रत्येक पुष्प ही सौरभ फैलाता है लेकिन इसमें भी पार्श्व प्रभु की सुगंध विशेष रूपेण मन को मोहती है। उनका शासन काल सब से कम और प्रतिष्ठा सब से ज्यादा। काल केवल 250 वर्ष किन्तु कीर्ति कौमुदी का प्रकाश अत्यधिक। 'सम्मेदशिखर' में बीस तीर्थङ्करों का निर्वाण कल्याणक हुआ पर प्रतिष्ठा है 'पारसनाथ हिल' की। इतना ही नहीं स्टेशन का नाम ही 'पारसनाथ' है।

भगवान पार्श्वनाथ भारतीय संस्कृति के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र रहे हैं, उन्होंने वैदिक परम्परा को भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर मोड़ा है। प्रभु पार्श्व के तीन कल्याणक गर्भ, जन्म और दीक्षा कल्याणक का श्रेय पुण्यभूमि वाराणसी को है।

जैन सूत्रों में वाराणसी के इतिहास का विचित्र विवरण मिलता है कि प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ने वाराणसी की स्थापना की थी। तीर्थ क्षेत्र के रूप में इसकी प्रसिद्धि सातवें तीर्थङ्कर भगवान सुपार्श्वनाथ के काल में हुई। इसके पश्चात महाराजा अश्वसेन की रानी वामादेवी की कुक्षि से पौष कृष्णा ग्यारस के दिन इसी पुण्य भूमि पर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म हुआ।

जैन मंदिर खुजराहो : खुजराहो अपनी अनुपम मंदिर निर्माण शैली तथा उत्कृष्ट शिल्प के लिए विश्व प्रसिद्ध होने के साथ-साथ आध्यात्मिक सांस्कृतिक व ललित कला का केन्द्र भी है। एक हजार वर्ष पूर्व चंदेल राजाओं के राज में बुंदेलखंड से बहुत से नगर जिनमें खुजराहो भी था, बहुत बड़ी संख्या में संपन्न जैन परिवारों के रहने का स्थान था। आमतौर पर जैन परिवार खुजराहों के पूर्व में रहते थे। वही पर इन परिवारों ने बहुत बड़े-बड़े जैन मंदिर बनवाएं। बहुत सी जैन पांडुलिपियां चंदेल राजाओं के समय की लिखी मंदिरों की दीवारों पर देखी जा सकती हैं। इस समय घंटाई मंदिर के अतिरिक्त शेष सभी मंदिर चारों ओर सुरक्षा की दृष्टि से एक परकोटे द्वारा एक अहाते में 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में बंद कर दिए गए थे, जिसमें वर्तमान में 22 शिखर बंद तथा 11 शिखर सहित मंदिर व धर्मशालाएं हैं। कभी यहां पर 85 मंदिर थे जो कालान्तर में नष्ट हो

कर अब कुछ ही शेष रहकर अपनी अद्‌भुत कला का व्याख्यान कर रहे हैं।

इनमें ऐतिहासिक व कलात्मक दृष्टि से आदिनाथ, पार्श्वनाथ, शांति नाथ व घंटाई मन्दिर प्रमुख हैं। इन जैन मंदिरों में कला की बड़ी सुंदर मूर्तियां स्थापित हैं, जिनमें मुख्य तौर पर लक्ष्मी-नारायण, बलराम-रेवती, इन्द्र, अग्नि, वामा, निमति, वरूण, वायु, कुबेर, अंम्बिका, कामदेव, रेती, राम-सीता तथा हनुमान है। चंदेल राजाओं के युग में बनने के कारण इन मंदिरों में सुरा-सुन्दरी अलग-अलग मुद्राओं में तथा गंधर्व मिथुनों की भी सुन्दर व कला पूर्ण मूर्तियां बनी हुई हैं। कुछ मूर्तियां काम क्रीड़ा की मुद्राओं में कला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

पार्श्वनाथ जैन मंदिर खुजराहो : एक शिलालेख के अनुसार पार्श्वनाथ जैन मन्दिर ई. सन् 954 में श्री पहिल जी द्वारा बनवाने का परिचय है, उन्होंने इसे बनवाने के लिए अपना एक बहुत बड़ा बाग दान में दिया था, जिस कारण यह सब से बड़ा जैन मंदिर है। उन्होंने आने वाली पुश्तों से इस मंदिर की रक्षा करने की विनती की थी। इस मंदिर के अन्दर जाने के लिए सात दरवाजे पार करने पड़ते हैं। दरवाजों पर बड़ा महीन काम किया गया है जो कि उस समय की कारीगरी की प्रमुख मिसाल हैं। प्रमुख मंदिर के बाहर बहुत बड़ा प्रांगण है जो कि एक बहुत बड़े मंडप से ढका हुआ है तथा इसके चारों ओर बहुत बड़ी परिक्रमा है। सारे मंदिर में एक भी खिड़की नहीं परन्तु इसे वास्तु के हिसाब से बनवाया गया हैं। इस मन्दिर में आर्ट की बहतरीन एक हजार वर्ष पुरानी अनेक मूर्तियां बनी हुई है। दीवारों पर भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां, खूबसूरत स्त्रियों की विभिन्न मुद्राओं में सैंकड़ों मूर्तियां तथा प्रेम प्रसंग में कई मूर्तियां हैं। क्योंकि भगवान पार्श्वनाथ जी विषय-वासना को हरण करने में सर्वाधिक समर्थ है, इसलिए इन दर्शायी हुई मूर्तियों को पार्श्व प्रभु के नाम की नागदमनी द्वारा विषयों का रस कड़वा लगने लगता है।

पार्श्वनाथ मंदिर के खुले प्रांगण में एक संग्रहालय है जिसमें बड़ी मात्रा में जैन संस्कृति की प्राचीन मूर्तियां, हस्तलिखित ग्रंथ, शिलालेख, स्तंभ व दुर्लभ कलाकृतियां सुरक्षित संगृहीत हैं। इन प्राचीन मूर्तियों में एक मूर्ति में प्रेमिका अपने प्रेमी को पत्र लिख रही है तथा एक खूबसूरत अप्सरा अपने पांव से कांटा हटा रही है। ये मूर्तियां कला की दृष्टि से बड़ी उत्कृष्ट मूर्तियां हैं। इस मंदिर की दीवार पर एक जादुई चौखटा बना हुआ है, जिस के 16 खाने हैं। किसी भी दिशा में गिनने पर 34 का योग फल बनता है। इस को चौंतीसियां यंत्र कहते हैं। इसका चित्र लेख के साथ तथा उसका आज की भाषा के शब्दों में अंकित किया गया है।

वाराणसी तथा खुजराहो पर डाक टिकटें : 3 अक्तूबर 1983 को नई दिल्ली में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए **GENERAL ASSEMBLY OF WORLD TOURISM ORGANISATION** का अधिवेशन हुआ था। इस अवसर पर वाराणसी के घाट तथा वाराणसी शहर के चित्र वाली एक रूपये मूल्य की बहुरंगी डाक टिकट जारी की गई थी। इस टिकट को 15 लाख की संख्या में छापा गया था। वाराणसी नगरी भगवान पार्श्वनाथ के गर्भ, जन्म तथा दीक्षा कल्याणक की पुण्य भूमि है। इस डाक टिकट का वर्णन सटेनले गिबण्स केटालाग-लंदन में नंबर **S.G 944** पर दिया गया है।

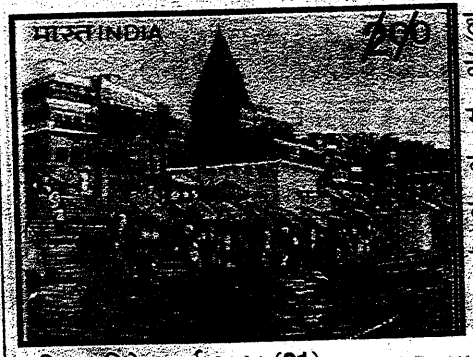

2. चौथी नियमित डाक टिकटों की शृंखला में 1 रुपये मूल्य

की लाल-ब्राऊन तथा हल्का जामनी रंग मिला कर एक डाक टिकट जारी की गई थी जिस पर दर्शाया गया है एक प्रेमिका अपने प्रेमी को पत्र लिख रही है। यह पार्श्वनाथ जैन मंदिर, खुजराहो में बनी हुई मूर्ति का चित्र है। इस का विवरण स्टेनले गिब्ज्स केटालाग-लंदन में नंबर **D-84** पर दिया गया है तथा इसे 1 जुलाई1966 को जारी किया गया था।

3. खुजराहो मंदिरों के बनने के 1000 वर्ष का समारोह भारतवर्ष में मार्च 1999 से मार्च 2000 तक एक वर्ष तक भारत सरकार ने मनाया था। इस समारोह को मनाने के उपलक्ष में भारत सरकार के डाक विभाग ने 6 मार्च 1999 को एक लाल-ब्राऊन, औरंज-ब्राऊन तथा काले रंगों को मिला कर संस्मारक डाक टिकट जारी की थी। इस डाक टिकट पर एक खूबसूरत अप्सरा अपने पांव से कांटा निकाल रही है। यह मूर्ति पार्श्वनाथ जैन मंदिर, खुजराहो की शोभा बढ़ा रही है। इस डाक टिकट को दस लाख की संख्या में छापा गया था। इसका विवरण सटेनले गिब्ज्स केटालाग-लंदन में **S.G नंबर 1678** पर दिया गया है।

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-17

जैन राजा भामाशाह

-सुरेश जैन, लुधियाना

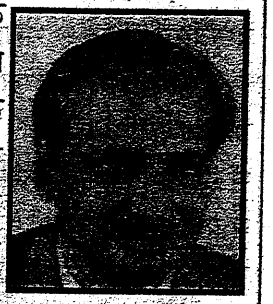

भामाशाह का नाम भारत के इतिहास में सबसे अधिक सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने बलिदान तथा देश भक्ति की सबसे ऊंची मिसाल कायम की थी। भारत के इतिहास में राणा प्रताप की वीरता तथा भामाशाह की दानशीलता प्रसिद्ध है। एक था रण-बाकुंरा, दूसरा था त्याग वीर, मेवाड़ की रक्षा के लिए राणा तलवार था और भामा ढाल था। दोनों के जीवन का व्रत था-राष्ट्ररक्षा, राष्ट्रसेवा व राष्ट्रशक्ति का संवर्धन।

महाराणा उदय सिंह के स्वर्गवास हो जाने पर महाराणा प्रताप को दो चीजें मिली-मेवाड़ का विशाल राज्य तथा महामंत्री के रूप में भामाशाह। राणा प्रताप से आयु में भामाशाह बहुत बड़े थे, अतः राणा प्रताप भामा का बहुत आदर करते थे। भामा का व्यक्तित्व अद्भुत था। बड़ी ऊमर में भी उनकी स्फूर्ति, उत्साह और कार्य करने की शक्ति तरुणों को आश्चर्य में डालती थी। भामा में बिजली की चमक थी और सागर की गर्जना। मुगल सम्राट अकबर की विशाल सेना के साथ राणा प्रताप की सेना का हल्दी घाटी में जो भयंकर युद्ध हुआ था, उसमें वीर भामाशाह ने मुख्य रूप से भाग लिया था। राणा ने भामा से कहा था-'भामा तुम केवल कलम के ही धनी नहीं हो, तलवार के भी धनी हो।'

हल्दी घाटी का युद्ध बहुत लंबा चला। अपने सैनिकों को भोजन दे सके इतना धन भी राणा के पास नहीं बचा था। भूखे सैनिक कब तक और किस शक्ति से लड़ते-राणा की सेना बिखरने लगी। राणा हताश हो चुके थे। अकबर की विशाल सेना से राणा अकेले कहां तक और कब तक लड़ते? वह अपनी जन्मभूमि को छोड़कर सिंध की ओर जाने का निश्चय कर चुके थे। अपने प्रयाण से पूर्व वह अपनी मातृभूमि से करुण स्वर में कह रहे थे- मातृभूमि तुझे अंतिम नमस्कार है, क्षमा करना जननी-तुम्हें स्वतंत्रता नहीं दिला सका अब मैं जाता हूं। यह तुम्हारा अंतिम दर्शन है। बहुत दिनों से भामाशाह राणा प्रताप की खोज कर रहे थे, न जाने कितने पहाड़ों को छान डाला था, फिर भी राणा नहीं मिले। राणा को न पाकर वह बहुत हैरान और परेशान थे। सहसा भामाशाह के कानों में यह शब्द पड़े 'अब मैं जाता हूं और यह तुम्हारा अंतिम दर्शन है' पहाड़ के सीने को चीरता हुआ भामा का स्वर फूट पड़ा और मैं भी तुम्हारे साथ चल रहा हूं, मेरे आका. मुड़ कर राणा ने भामा को देखा और उठकर गले मिले। भामा के नेत्रों से आंसू बह निकले। वह बोले- अभी तो मेवाड़ की स्वतंत्रता और चितौड़ की मुक्ति करवाना शेष है। राणा ने निराश स्वर में कहा- यह सब स्वप्न रह गया है। मेरे पास तो इतना धन भी नहीं कि एक सैनिक का पेट भर सकूं। भामा ने कहा कि आप चिन्ता न करें, हिम्मत न हारें, मेरे पूर्वजों ने जो धन-राशि संचित की है वह सब आप को अर्पण करता हूं, वह धनराशि इतनी है कि बारह वर्षों तक पच्चीस हजार सैनिकों का खर्च चल सकता है। आप सैनिक एकत्रित कीजिए। मेरे पूर्वजो ने यह सब इसी मातृभूमि से पाया है, और आज उसी की रक्षा के लिए अर्पण कर रहा

हूं। भामा की वीर वाणी सुनकर राणा का पस्त हुआ साहस फिर से जागृत हो गया। राणा की रण-वीरता और भामा की दान-वीरता ने फिर से मेवाड़ को झकझोर कर खड़ा कर दिया। राजस्थानी वीर फिर से अपनी जन्मभूमि की स्वतंत्रता और चितौड़ की मुक्ति के लिए जूझ पड़े। राजस्थानी वीरों की हुंकार से हल्दी घाटी मुखरित हो उठी। मेवाड़ के जन-जन के प्राण-प्राण से स्वर फूट पड़ा। 'धन्य है, भामाशाह की दानवीरता, धन्य है राणा प्रताप की युद्धवीरता'।

भामाशाह पारिवारिक परिचय व देश प्रेम : मेवाड़ में एक ग्राम है खमणोर, जिसमें श्री भारमल जी कावड़िया रहते थे। वह जाति के ओसवाल जैन थे। इस परिवार की गणना उच्चकोटि के धनी परिवारों में होती थी। इनके परिवार को प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ भगवान पर अटूट श्रद्धा व आस्था थी। श्री भारमल ने परिवार का व्यापार संभालने की बजाए अपने देश की रक्षा करने को प्रमुख स्थान दिया। उनकी बहादुरी की ख्याति सुनकर राणा सांगा ने उनको रण्थम्भोर राज्य का किलेदार बनाया। किलेदार कौन होता है? उस जमाने में जो भी राजा का किला जीत लेता था वह पूरे राज्य का स्वामी बन जाता था। इसलिए किले की रक्षा करना सबसे कठिन काम होता था। यह काम किलेदार तथा उसके नीचे फौज के सुपुर्द होता था। ओसवालों ने सदा राणाओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने देश की रक्षा की है, इसलिए राणा वंश में ओसवाल जाति का सदा सत्कार व सम्मान रहा है।

भामाशाह का जन्म ईसवीं सन् 1547 को हुआ था, इनको राजकुमार की तरह युद्धकला की शिक्षा मिली थी। पिता के जीवनकाल में भी भामाशाह युद्ध में अपना लोहा मनवा चुके थे। पिता को अपने पुत्र की धीरता, वीरता तथा योग्यता पर पूर्ण विश्वास था। कुछ समय बाद महाराणा उदय सिंह ने भारमल जी को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। भारमल जी अपने अंतिम समय तक मेवाड़ के प्रधानमंत्री रहे। इनका स्वर्गवास होने के बाद वृद्ध राणा की पारखी नज़रों ने भामा में छिपे हुए तेज को पहचान लिया था, अत: भारमल जी के स्थान पर तरुण भामा को राणा उदय सिंह ने अपना प्रधानमंत्री तथा सेनापति नियुक्त कर दिया तथा उसके हाथों में राज्य की बागडोर सौंप कर संतुष्ट हो गए। उदय सिंह की मृत्यु के बाद राणा प्रताप ने भामाशाह को अपने राज्य का प्रधानमंत्री तथा सेनापति नियुक्त किया। इन्होंने अपने छोटे भाई ताराचंद के साथ मिलकर मेवाड़ के लिए कई युद्ध लड़े। भामाशाह की मृत्यु इस्वीं सन्1600 में हो गई। इनकी एक यादगार उदयपुर में बनी हुई है। भामाशाह की कई पुश्तों ने उदयपुर के महाराणाओं की प्रधानमंत्री के तौर पर सेवा की है, आज भी उनके वंशज उदयपुर में रहते हैं।

जब भामाशाह ने राणा प्रताप को युद्ध के लिए धन दिया उस समय इनके परिवार ने माऊंट आबू में विश्व प्रसिद्ध दिलवाड़ा जैन मंदिरों के बिल्कुल समीप जैन मंदिर बनवाना शुरु कर दिया था, नींव भरी जा चुकी थी, दीवार बननी शुरू हो चुकी थी, उन्होंने मंदिर का कार्य रोक दिया तथा सारा धन जो कि उस समय 100 करोड़ रुपया था, वह राणाप्रताप के चरणों में रख दिया ताकि यह धन देश की आजादी के काम आए। आज भी भामाशाह तथा इनके परिवार के मंदिर निर्माण कार्य की भरी हुई नींव तथा दीवारें देखी जा सकती है।

आज के समय में भी यदि कोई धनवान व्यक्ति समाज को बड़ा दान देता है तो उसकी संज्ञा भामाशाह से की जाती है।

भामाशाह पर डाक टिकट : 31 दिसंबर सन् 2000 को देश के महान व्यक्तियों की श्रृंखला में दानवीर जैन राजा भामाशाह के चित्र वाली एक डाकटिकट भारत सरकार के डाक विभाग ने जारी की थी। इस बहुरंगी डाक टिकट का मूल्य 300 पैसे है, यह चार लाख संख्या में छापी गई थी। टिकट के बीचों बीच एक गोल दायरे में भामाशाह का चित्र बना हुआ है। इसका विवरण सटे नले गिब्ज्स केटालाग लंदन में **S.G** नंबर 1808 पर दिया गया है।

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-18

भगवान महावीर 2600वां जन्म कल्याणक व जैन प्रतीक

-सुरेश जैन, लुधियाना

स्वतंत्र भारत एवं विदेश : अप्रैल 2001 में पूरे विश्व भर में भगवान महावीर का 2600वां जन्म कल्याणक बड़े उत्साह एवं श्रद्धा से मनाया गया था। लिच्छवियों की तत्कालीन राजधानी वैशाली के कुंडग्राम के राजकुल में वर्द्धमान (महावीर) का जन्म हुआ। उनके पिता राजा सिद्धार्थ इस क्षेत्र के प्रतिष्ठित शासक थे। उनकी धर्म पत्नी रानी त्रिशला ने नौ माह साढ़े सात रात्रि पश्चात चैत्र शुक्ला त्रियोदशी के शुभ दिवस में त्रिलोक वन्द्य पुत्र-रत्न को जन्म दिया जो प्रभु का 'कल्याणक' कहलाया।

'कल्याणक' शब्द तीर्थंङ्कर के जीवन के मंगलमय अवसर से सम्बद्ध है। ऐसे मंगलावसर पांच हैं। 1. च्यवन कल्याणक, 2. जन्म कल्यांणक, 3. दीक्षा कल्याणक, 4. केवलज्ञान कल्याणक, 5. निर्वाण कल्याणक। इनके जन्म से इनके पिता के राज्य में चारों ओर वृद्धि ही वृद्धि हुई थी, इसलिए इनका नाम वर्द्धमान रखा गया। वह बचपन से ही बड़े वीर थे तथा जीवन काल में कठोर साधना कर, कैवल्य द्वारा सुख और दु:ख पर बड़ी वीरता से विजय प्राप्त की, इस कारण उन्हें महावीर के रूप में जाना जाने लगा।

भगवान महावीर का जन्म स्थान : बहुत समय तक नालंदा का प्राचीन भाग कुंडलपुर ही वर्द्धमान महावीर का जन्म स्थान माना जाता था। अब ऐतिहासिक खोज के आधार पर भगवान महावीर की जन्म स्थली का गौरव वैशाली के कुंडग्राम को प्राप्त हुआ है। यहां खेतों के बीचों-बीच करीब दो बीघे भूमि सदियों से बिना जोते पड़ी है। स्थानीय जनता की परम्परागत आस्थानुसार इस पवित्र स्थल पर भगवान महावीर का जन्म हुआ था। अत: यह भूमि सदा से पूज्यनीय रही है और रहेगी। इस पर कभी किसी ने भूल से भी हल नहीं चलाया। यहां के निवासी श्रद्धापूर्वक इस स्थान की सुरक्षा किए हुए हैं। कुछ समय पूर्व स्थानीय लोगों ने भगवान महावीर का स्मारक बनाने के लिए यह भूमि बिहार सरकार को दान कर दी थी जो बिहार सरकार से दिगम्बर जैन समाज को प्राप्त हो गई है। अब इसका विकास पूरी तरह से दिगम्बर जैन समाज कर रहा है।

21 अप्रैल 1948 को भगवान महावीर के जन्म स्थान पर पहली बार महावीर जयंती मनाई गई। 1951 में जैनियों की वैशाली कुंडपुर तीर्थ प्रबंधक कमेटी की स्थापना हुई। यहां पर एक चौकोर कुंड बना कर उसमें पक्का कमल पुष्प बनवा कर शिलापट्ट लगाया गया जिसका अनावरण भगवान महावीर के जन्म के 2555 वर्ष बाद सन् 1956 में तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा किया गया था। इसका नाम वासु कुंड है। भगवान महावीर का हृदय बड़ा करूणामय था। उन्होंने समाज में चारों ओर विभिन्न बुराइयों को देखा, उनके निवारण करने की खोज करने के लिए उनके हृदय ने उन्हें प्रेरित किया। 30 वर्षों तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के बाद सत्य की खोज करने के लिए संन्यासी बन गए। साढ़े बारह वर्ष कठिन

तपस्या करने के बाद उनको ऋजुबालुका नदी (जिसे आज बराकर नदी कहते हैं) इस के तट पर श्यामाक नामक किसान के खेत में शाल वृक्ष के नीचे वैशाख शुक्ला 10 के दिन पिछली पोरसी के समय विजय मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् भगवान महावीर ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के पाँच महान सिद्धातों की शिक्षा दी। उन्होंने अपने अनुयायियों को किसी भी जीव की हत्या न करने, किसी को पीड़ा न पहुंचाने, किसी को दास न बनाने, किसी को यातना न देने, किसी का शोषण न करने का उपदेश दिया। उनका मत था कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वामी स्वयं है और प्रत्येक आत्मा में इतनी क्षमता है कि वह परमसिद्धि तक उठकर चरमावस्था को प्राप्त कर सके जिसे प्राप्त करने पर वह पुनर्जन्म के बंधन से मुक्त हो जाती है। उन्होंने समाज में प्रचलित सभी बुराइयों के विरूद्ध धर्म युद्ध छेड़ा। अज्ञानान्धकार को दूर कर इस जग तितल पर धर्म प्रकाश फैलाया। उन्होंने अपने ज्ञान भरे प्रकाश से लोगों को सम्यक् ज्ञान **(RIGHT KNOWLEDGE)** सम्यक् दर्शन **(RIGHT BELIEF)** एवं सम्यक् चारित्र **(RIGHT CONDUCT)** सच्चा मार्ग दिखलाया।

जैन प्रतीक : भगवान महावीर के 2600वें जन्म कल्याणक के अवसर पर जैन प्रतीक के चित्र वाली एक डाक टिकट जारी की गई थी। जैन प्रतीक में स्वस्तिक को त्रिलोकाकार-पुरुषाकार में अपनाया गया है। स्वस्तिक को जैनधर्म ही नहीं वरन् सभी धर्मों ने महत्वपूर्ण माना है। स्वस्तिक का चिन्ह सर्वथा मङ्गलकारी है। स्वस्तिक के ऊपर तीन बिन्दु सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र के रूप में तीन रत्नों के द्योतक हैं। इन त्रिरत्नों के ऊपर अवस्थित धर्मचन्द्र सिद्धशिला को दर्शाता है। स्वस्तिक के नीचे जो हाथ हैं वह संसारी प्राणियों को जन्म जरा मरण के भय और दु:खों के कारणों से हटाकर अभय होने का आश्वासन देता है। अभय हस्त के मध्य में अहिंसा रूपी धर्म-चक्र है जो धर्म का केन्द्र बिन्दु है। चक्र के चौबीस आरे काल समय के आरे के रूप में है जो उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी के कालचक्र को सूचित करते हैं। साथ ही स्याद्वाद व अनेकान्तवाद की सूक्ष्म दृष्टियों से वस्तु के हर पहलू को समझने व तदनुरूप आचरण का स्वर्णिम संदेश देते हैं। प्रतीक के नीचे जो बाक्य है। **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** यह वाक्य सही अर्थों में भारतीय संस्कृति का मूल है। सर्व धर्मों का ज्वलन्त सूत्र है। स्वस्तिक व जैन प्रतीक हमें जगत के जंजाल से छूटकर मोक्ष मार्ग में कदम बढ़ाने का शुभ संकेत देते हैं। इसके चौबीस आरे जैन धर्म के 24 तीर्थङ्करों को भी सूचित करते हैं। हाथ की पांच उंगलियां जैन धर्म के पांच महाव्रतों को इङ्गित करती हैं। प्रतीक जिस शोभनीय ढंग से निर्मित है, उससे समूचे जैन शासन की अत्युत्तम अभिव्यक्ति होती है।

जैन प्रतीक पर डाक टिकट : चारों जैन सम्प्रदायों को मान्य जैन प्रतीक के चित्र वाली डाक टिकट भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा 6 अप्रैल 2001 को भगवान महावीर के 2600वें जन्म कल्याणक पर जारी की गई थी। इस चार रंगी डाक टिकट का मूल्य 300 पैसे है तथा बिना जल चिन्ह वाले इम्पोर्टिड स्टैम्प पेपर पर 30 लाख संख्या में फोटो आफसेट मुद्रण प्रक्रिया से छापा गया था।

डाक टिकट का डिजाइन : डाक टिकट में सबसे ऊपर भारत 300 मूल्य रखा है। टिकट के बीच में पीले रंग में जैन प्रतीक का पूरा चित्र दिया गया है तथा प्रतीक के नीचे

परस्परोपग्रहो जीवानाम् लिखा है। सबसे नीचे दो लाइनों में हिन्दी तथा अंग्रेजी शब्द अंकित हैं वह इस प्रकार हैं:

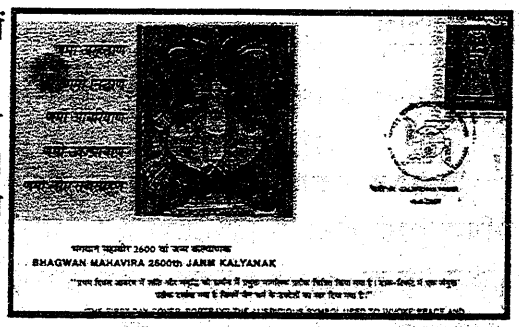

भगवान महावीर 2600वां जन्म कल्याणक **BHAGWAN MAHAVIR 2600TH JANAM KALYANAK** 2001 पूरी टिकट की पृष्ठ भूमि पर तथा चारों ओर बार्डरों पर हल्के रंगों में तथा छोटे साइज में 42 जैन प्रतीक चित्रित हैं।

पाठकों की जानकारी के लिए यह बात भी रोचक होगी कि इस डाक टिकट के साथ जो प्रथम दिवस आवरण **First day Cover** डाक विभाग द्वारा जारी हुआ था उस पर महामंत्र नवकार अंकित है। यह संसार का प्रथम आवरण है जिस पर सरकार द्वारा महामंत्र नवकार छापा गया है। इस टिकट का विवरण लंदन इंग्लैड से छपने वाले **Stanley Gibbons Catalouge** में **SG no. 1827** पर दिया गया है।

विदेशों में भी जैन प्रतीक पर डाक टिकटें जारी हुई हैं : सर्वप्रथम नेपाल ने 6 अप्रैल 2006 को विश्व हिन्दू फेडरेशन के रजत जयंती अधिवेशन के अवसर पर एक डाक टिकट जारी किया गया था जिस पर भारतीय धर्मों के अलग-अलग चिन्ह दर्शाए गए थे, उनमें एक जैन प्रतीक था। दूसरा डाक टिकट कांगों ने विश्व धार्मिक दिवस पर 20 जनवरी 2007 को जारी किया था। इस पर संसार के कुछ प्रमुख धर्मों के चिन्ह अंकित हैं, उनमें एक चिन्ह जैन प्रतीक है।

प्रथम दिवस आवरण FIRST DAY COVER

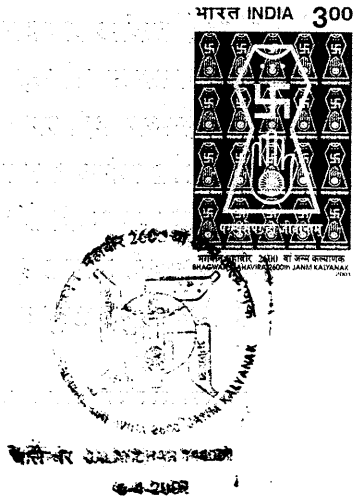

भगवान महावीर 2600 वां जन्म कल्याणक
BHAGWAN MAHAVIRA 2600th JANM KALYANAK

Stamp on Jain Acharya Shri Gyansagar ji Maharaj

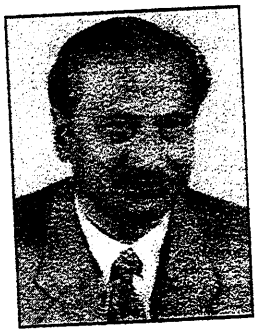

A commemorative Postage Stamp of Rs. 5/- has been issued on 10th Sept. 2013 on Renowned **Digamber Jain Acharya Shri Gyansagar ji Maharaj**. Union State Minister for Corporate Affiars Mr. Sachin Pilot released this stamp in a grand function at Kishangarh (Distt. Ajmer, Rajasthan).

Acharya Gyansagar ji was born at Village Ranoli, Dist. Sikar (Raj.) on 2nd June, 1891. His childhood name was Bhooramal. After completing primary studies in his village, he graduated as a Shastri from Queens College, Banaras; While studying, he took vow of celibacy and resolved to dedicate his life to tenets of Jainism.

He was initiated Kshullak Diksha by Acharya Shri Veersagarji and then named Kshullak Gyan Bhushan. He remained Kshullak for 2 years and 2 more years as Ailak before becoming a Muni. He was initiated a monk Diksha by Acharya Shri Shivsagar ji Maharaj on 20th June 1959. He was further elevated to the Acharya status in 1968 at Nasirabad (Rajasthan). Shri Gyansagar ji conferred his Acharya status to his follower Shri Vidyasagar ji Maharaj on 22nd Nov. 1972. Acharya Gyansagar ji breathed his last on 1st June, 1973 at Nasirabad.

As an expert in Sanskrit, he had been a great composer in Sanskrit, atleast 30 researchers have studied his works and were honoured Doctoral degrees. At least 300 Scholars have presented research papers on his works. His works includes 4 Sanskrit epics and 3 other jain Granths and that too in the time when Sanskrit composition was almost obsolete. These creations have always surprised the modern Sanskrit scholars. He made the outstanding contribution towards revival and enrichment of Jain Literature. His Literature and teachings will continue to enlighten the path of his followers. ♦♦

■
Suresh Jain
Ludhiana
■